डी.सी.सी.टी.-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डिप्लोमा कोर्स इन कल्चर एण्ड टूरिज्म
संस्कृति एवं पर्यटन में डिप्लोमा कोर्स

Traditions and Culture of the People of Rajasthan (State and Society)

राजस्थान के निवासियों की परम्पराओं एवं संस्कृति की एक रूपरेखा (राज्य एवं समाज)

डी.सी.सी.टी.-02

Diploma Course in Culture and Tourism **4**

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डिप्लोमा कोर्स इन कल्चर एण्ड टूरिज्म
संस्कृति एवं पर्यटन में डिप्लोमा कोर्स

Traditions and Culture of the People of Rajasthan (State and Society)

राजस्थान के निवासियों की परम्पराओं एवं संस्कृति की एक रूपरेखा (राज्य एवं समाज)

डी.सी.सी.टी. - 02

Diploma Course in Culture and Tourism 4

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

(1) प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा
कुलपति, कोटा खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

(2) **डॉ. आर.के. सक्सैना**
रिटायर्ड अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एम.एल. सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

(3) प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लायब्रेरी,
तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली

(4) पदमश्री (श्रीमती) लक्ष्मी कुमारी चूंडावत
प्रसिद्ध साहित्यकार एवं मनीषी,
बनीपार्क, जयपुर

(5) प्रो. एम.एस. जैन
रिटायर्ड प्रोफेसर, इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

(6) डॉ. नवीन माथुर
अध्यक्ष, मैनेजमेंट स्टडीज विभाग
जे.एन. व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

(7) प्रो. दिलबाग सिंह
अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

(8) **प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा, (पाठ्यक्रम संयोजक)**
अध्यक्ष,भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

(1) डॉ. वी.एस. भार्गव
रिटायर्ड प्रिन्सिपल, अजमेर

(2) **प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा**
अध्यक्ष,भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

(3) डॉ. शशि अरोड़ा
अध्यक्ष, इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

(4) श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूंडावत
प्रसिद्ध साहित्यकार एवं मनीषी,
जयपुर

(5) डॉ.(श्रीमती) वासुमती शर्मा
शोध अधिकारी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

(6) श्री शाहिद खान
जयपुर

सम्पादन एवं संशोधन

प्रो. जी. एस. एल. देवड़ा, अध्यक्ष,
भारतीय संस्कृति एवं परम्परा विभाग,
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.)एम.के. घडोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अप्रैल 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी'(चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

कुलसचिव, व. म. खु. विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

डी.सी.सी.टी.-2
डिप्लोमा कोर्स इन कल्चर एण्ड टूरिज्म
संस्कृति एवं पर्यटन मे डिप्लोमा कोर्स

पाठ्यक्रम- द्वितीय
खण्ड- चतुर्थ

4 राजस्थान के निवासियों की परम्पराएँ एवं संस्कृति(राज्य एवं समाज)

इकाई- 22	जीवन शैलियाँ तथा संस्कार	7–12
इकाई- 23	खानपान	13–21
इकाई- 24	पोषाक	22–27
इकाई- 25	मेले एवं सामाजिक समागम	28–37
इकाई- 26	पर्व एवं त्यौहार	38–47
इकाई- 27	खेलकूद	48–57
इकाई- 28	आमोद-प्रमोद के साधन	58–64

इकाई स. 22 “जीवन शैलियाँ तथा संरचना”

इकाई सरंचना

22.01 उद्देश्य
22.02 प्रस्तावना
22.03 संस्कार
22.04 प्रात: कालीन गतिविधियां
22.05 शोक
22.06 सांय-रात्रि बैठकें
22.07 रात्रि जागरण
22.08 पानी का महत्व
22.09 विशिष्ठ सम्बोधन
22.10 अन्धविश्वास
22.11 इकाई सारांश
22.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

22.01 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से विद्यार्थियों को ज्ञान कराना है कि मानव जीवन में संस्कार, व्यवहार एवं आदतों का विशिष्ठ महत्व है । मानव की पहचान इन्हीं के द्वारा की जाती हैं । सभ्य और असभ्य मानव के बीच अन्तर इन्हीं विशेषताओं के आधार पर किया जाता है । मानव का मस्तिष्क उसके व्यक्तित्व का दिग्दर्शन कराता है । मानव अपनी मानसिक विचारधारा के द्वारा संस्कारों की पालना करता है । कुछ संस्कार उसे विरासत में अपने माता -पिता व अन्य बुजुर्गों तथा सामाजिक प्राणियों के द्वारा प्राप्त होते हैं जबकि अन्य संस्कारों का पालन उसे सामाजिक प्राणी के रूप में करना पड़ता है । जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव संस्कारों के बंधन में जकड़ा रहता है । मानव का जैसा स्वभाव होता है उसी के अनुसार उसकी आदत पड़ जाती है । एक कहावत है Habits die hard अर्थात् एक बार आदत पड़ जाने के बाद उससे मुक्ति प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता है । एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानव का व्यवहार शिष्ठ है अथवा नहीं इसकी जानकारी हमें उसके खानपान, रहन सहन और भाषण से प्राप्त होती है । अतएव विद्यार्थियों की जानकारी के लिए प्रस्तुत इकाई में ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में उपरोक्त तीनों अवधारणाओं का वर्णन किया गया है । खानपान का विस्तृत विवरण अलग से अगली इकाई में दिया गया है ।

22.02 प्रस्तावना

मानव जन्मजात एक सामाजिक प्राणी है, उसे समाज में रहकर अपने जीवन को जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यतीत करना पड़ता है । अतएव उसे उन सामाजिक बंधनों और परम्पराओं की

अनुपालना करनी पड़ती है कि जो समाज विशेष में प्रचलित है । यदि मानव उनकी अपेक्षा करता है तो उसका सामाजिक बहिष्कार किया जा सकता है । मनुष्य अपने परिवार में रहते हुए उन संस्कारों का अनुसरण करता है जो उसकी पारिवारिक परम्परायें हैं । घर और समाज में रहते हुए एक मानव किस प्रकार व्यवहार करता है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसका व्यवहार शिशु है अथवा अशिष्ठ । उसके रहन सहन, उसके वस्त्र उसके खानपीन, उसकी बोलचाल का ढंग उसके व्यवहार को इंगित करता हैं । जो व्यक्ति शिष्ठ व्यवहार नहीं करता उसे लोग अशिष्ट अथवा बदतमीज कहकर पुकारते हैं । उसकी आलोचना की जाती है, परिणाम स्वरूप उसका सामाजिक जीवन दूभर होने लगता है । सामाजिक आलोचनाओं से मुक्ति प्राप्त करने के लिए उसे कुछऐसे कार्य करने पड़ते हैं, जिन्हें वह अपनी इच्छा के प्रतिकूल करते हुए मानसिक तनाव अनुभव करता है! मानव की आदतें उसके जीवन में रहन सहन का दिग्दर्शन कराती है । इस परिपेक्ष्य में आगामी पृष्ठों में संस्कारों. व्यवहारों और आदतों का विश्लेषण किया गया है । यहाँ हम स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहते हैं कि जीवन शैली के बहुत से पक्ष अलग - अलग इकाइयों के अध्ययन में आ चुके है, इस कारण यहां कुछ ही बचे पक्षों पर प्रकाश डाला गया है ।

22.03 संस्कार

भारत के अन्य भागों के समान राजस्थान भी ऐसा प्रदेश है जिसमें विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और मतमतान्तरों के अनुयायी निवास करते हैं । इस भू भाग में हिन्दुओं का बाहुल्य है उनके सामाजिक रीतिरिवाज परिवर्तनशील रहे हैं । धार्मिक आचार विचार सम्पर्क के कारण प्रभावित होता रहता है । अतएव धर्म से संबंध संस्कारों में भी परिवर्तन आ जाता है । अधिकांश राजस्थान धार्मिक विश्वास दार्शनिक है जो पौराणिक काल से वंशानुगत रूप में चले आ रहे हैं । यद्यपि हिन्दू धर्म के अनुयायी रूपरेखा उनकी नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त नहीं करते, लेकिन फिर भी धार्मिक बंधनों के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसे ऐसे कर्म करने चाहिये जिसके फलस्वरूप उसकी आवागमन के बंधनों से मुक्ति हो जाये । हिन्दू धर्म में तीन मार्ग बतलाये गये हैं । मोक्ष, कर्म और ज्ञान इन्हें प्राप्त करने के लिए भक्ति मार्ग का अनुसरण किया गया है ।

हिन्दुओं के समान मुस्लिम समाज में भी सूफी संतों ने अपने अनुयाइयों को बताया था कि उन्हें इबादत के द्वारा सांसारिक बंधनों से छुटकारा प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये । सूफी सम्प्रदाय अपने उद्देश्य एवं प्रचार प्रसार में भक्ति आन्दोलन से मिलता जुलता है । राजस्थान में ईस्लाम के पर्दापण के साथ सर्वप्रथम अजमेर और उसके बाद नागौर, सरवाड़, सांभर इत्यादि स्थानों पर सूफी सम्प्रदाय का प्रचार प्रसार हुआ था । अकबर के शासन काल तक भारत में सूफी मत की 20 उपशाखाऐं बन चुकी थी इनमें सर्वाधिक प्राचीन और लोकप्रिय शाखा चिश्ती सम्प्रदाय की थी जिसका अजमेर केन्द्र था । सूफी सन्तों को हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ने श्रद्धा की दृष्टि से देखा है । हिन्दू और मुसलमानों के अतिरिक्त राजस्थान प्रदेश मैं जैन धर्म के अनुयायियों का अनादि काल से बाहुल्य रहा है । ये लोग भगवान महावीर स्वामी के अनुयायी हैं । ऋषभदेव, भीनमाल, नाकोडा, महावीरजी इत्यादि जैन धर्मों के केन्द्र बिन्दु हैं । जैन धर्म के साधु प्राचीन समय से ही इस प्रदेश में मुक्त रूप से विचरण करते रहे हैं । वर्षा काल को छोडकर शेष समय में जैन धर्म के साधु एक स्थान से दूसरे स्थान तक विचरण करते हैं, अपने भाषणों के माध्यम से अनुयायियों को संस्कारों की दीक्षा देते हैं । इस प्रकार जैन धर्म

के सिद्धान्त को लुप्त होने से बचाए रखने का प्रयास अनादिकाल से होता रहा है । जैन साधुओं का समाज की शिक्षण संस्थाओं के साथ भी गहन सम्बन्ध रहा है । स्थान -स्थान पर उपासरें स्थापित किये गये जिनके माध्यम से धार्मिक शिक्षा, दीक्षा अनुयायियों को दी जाती रही है ।

अल्पसंख्यक समुदाय में ईसाइयों, पारसियों, बौद्धों इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है । ये लोग अपने धार्मिक गुरुओं की शिक्षाओं के अनुकूल अपने जीवन को व्यतीत करते हैं । अतएव सामाजिक व्यवहारों में मनुष्य की आदतें वातावरण के अनुसार बन जाती हैं । उसके आचार विचार और व्यवहार उसी के अनुकूल ढल जाते हैं । राजस्थान में किसी समय बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचलन था लेकिन मध्ययुग तक आते-आते उसका पतन हो गया । ब्रिटिशकाल में ईसाई धर्म का प्रचार हुआ । राजस्थान में अजमेर सांभग एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ हिन्दू मुस्लिम, पारसी, जैन, ईसाई आदि सभी के धार्मिक स्थल हैं । हिन्दुओं में सोलह संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरोहितों के द्वारा सम्पन्न कराये जाते हैं । पुरोहित ही शुभ और अशुभ का ज्ञान कराते हुये प्रत्येक धार्मिक संस्कारों के लिए शुभ घड़ी और तिथि निश्चित करते हैं । बालक के जन्म के पश्चात नामकरण का संस्कार हिन्दू समाज में अनादिकाल से प्रचलित है । इसी प्रकार विवाह के लिए पुरोहित के माध्यम से नर वधु की जन्म कुंडली का मिलान करवाने, विवाह के समय अथवा उससे पूर्व, विद्या आरम्भ संस्कार तथा (यज्ञोपवीत) जनेऊ धारण करने का समारोह प्रत्येक परिवार में आयोजित किये जाते हैं । विभिन्न प्रकार के नक्षत्रों के आधार पर भनिष्यवाणी करने की जो परम्परा हिन्दू समाज में प्रविष्ठ हो गयी थी उसने कालान्तर में प्रगाढ़ संस्कारों का स्वरूप धारण कर लिया था ।

22.04 प्रात: कालीन गतिविधियाँ

प्रदेश में सामान्यत: लोग जल्दी उठ जाते हैं । कृषक व पशुपालक अपने पशुओं की देखभाल एवं दूध निकालने तथा 'बिनोला' करने में व्यस्त हो जाते हैं । लोग नहा-धोकर मन्दिरों में जाने में उत्सुकता दिखाते हैं । जैन समाज की स्त्रियाँ अपने सन्तों के दर्शन करने के लिए 'दादाबाड़ी ' जाती हैं और यह स्थान सामान्यत: नगर से बाहर होता है । लोग प्रात: पशुओं को घास खिलाने तथा पक्षियों को दाना खिलाने में बहुत रुचि रखते हैं । लोग अपने अराध्य देव के दर्शन करके ही दिन-प्रतिदिन का कार्य प्रारम्भ करते हैं । जयपुर में गोविन्ददेव जी, बीकानेर में लक्ष्मीनारायणजी, जोधपुर में रणछोड़दास जी, कोटा में मथुराधीशजी, उदयपुर में जगदीशजी, नाथद्वारा में श्रीनाथ जी के दर्शन करके आश्वस्त होते हैं । सुबह को टहलने की परम्परा आधुनिक शहरी जीवन की अधिकदेन है ।

22.05 शोक

इसे 'गमी' भी कहा जाता है । लोग प्राय: दूर के रिश्तेदारों तक मोहल्ले के वासी तथा कार्यक्षेत्र में आने वाले किसी व्यक्ति की मृत्यु पर अवश्य शोक प्रकट करने जाते हैं । एक आम धारणा है कि किसी की शादी में चाहे न जाओ पर किसी घर में गमी होने पर अवश्य जाओ । शोक प्राय: 12 दिनों तक चलता रहता है । पहले किसी शासक, ठाकुर या जागीरदार की मृत्यु होने पर पूरे गाँव व शहर के व्यस्क एवं छोटे सभी अपने बालों को साफ करा लेते थे । इस प्रथा को ' भद्र ' कहते हैं और इस

अवस्था को देखकर बाहर के व्यक्तियों को पता लग जाता है कि इनके घर में कोई गमी हुई है । पहले मृत्युभोज या ' औसर ' करना आवश्यक समझा जाता था ।

22.06 सायं-रात्रि बैठकें

प्रदेशवासियों को दिन भर का कार्य निबटा देने के बाद या तो अपने घर के बाहर अथवा किसी नुक्कड़ पर या घर की गली के बीच अथवा पास के मैदान में बैठकर पडोसियों व मौहल्ले वालों के साथ बैठकर चर्चा करना बहुत सुहाता है । वैसे इस प्रकार की संस्कृति पूरे दक्षिण एशिया में देखने को मिलती है । इन बैठकों में न केवल अपने दिन -प्रतिदिन के कार्यों की समस्याओं पर बल्कि क्षेत्र, देश -विदेश एवं नयी कौतुहलों पर खुलकर चर्चा होती है । इस समय बीड़ी, सिगरेट, हुक्का व चिलम का सेवन भी होता रहता है । इन बैठकों से जहाँ परस्पर मतभेद दूर होते हैं व सामान्य समस्याओं का निराकरण होता है वहीं सूचनाओं का आदान -प्रदान भी होता है । मारवाड़ क्षेत्र में मोहल्लों के मध्य लकड़ी के तख्त या पाटा पर लोग बैठकर दुनिया भर की चर्चा करते हैं एवं उन चर्चाओं को 'पाटा गजट' (राजेटियर) कहा जाता है ।

स्त्रियाँ भी गली -मौहल्लों में बैठकर चर्चा करती हैं व गीत गाती रहती है । कई बार इन चर्चाओं का काल अर्द्धरात्रि तक चलता रहता है । ये बैठकें शहर में पान या चाय की दुकानों पर भी लगती है । इन चर्चाओं को 'हथाई ' भी कहा जाता है ।

22.07 रात्रि जागरण

राजस्थानी में इसे 'राती जग्गा ' कहा जाता है । एक समूह या सम्प्रदाय से जुड़े लोग अपने ईष्टदेवताओं की अर्चना के लिये रात्रि भर वाद्ययन्त्रों के साथ भजन गाते हैं । चूंकि यह क्रम पूरी रात चलता है, इस कारण इसे राति जग्गा कहते हैं । इसके अतिरिक्त लोग अपनी मनोकामना पूर्ण होने पर तथा किसी शुभ कार्य को आरम्भ करने पर भी इस प्रकार के आयोजन करते हैं । भजन गाने वाले कुछ विशिष्ट व्यक्ति होते हैं और उन्हें इन अवसरों पर सदैव स्मरण किया जाता है । ज्यादातर दशाओं में यह भजन कार्यक्रम हारमोनियम एवं तबले के साथ संचालित होता रहता है ।

22.08 पानी का महत्त्व

राजस्थान का अधिकांश भाग रेतीला या रेतीला जैसा है और शुष्क जलवायु में कई स्थलों पर पानी 400 फीट की गहराई के कुओं में मिलता हैं । उस पर भी यह गारण्टी नहीं कि वह हर दृष्टि से पीने योग्य हो । दक्षिणी - पूर्वी राजस्थान का सभांग जरूर बहती नदियों के कारण भाग्यशाली है और यही कारण है कि पश्चिमी राजस्थान के लोग अकाल व सूखे के समय इन क्षेत्रों में आकर अपना समय बिताते हैं परन्तु साथ ही यहाँ भी चारा व पानी की समस्या भी खड़ी कर देते हैं । प्रदेश में यह चर्चा रहती हैं । कि उन गांवों में विवाह नहीं करना चाहिये जहाँ पानी की समस्या रहती हो । फिर भी यहाँ की नारियों के जीवन का अधिकांश भाग दूर - दराज से पानी लाने में ही बीत जाता है । लेकिन इस समस्या का हल प्राकृतिक रूप से तो नहीं परन्तु सांस्कृतिक ढंग से अवश्य ढूंढा गया है । पनिहारिन

का चित्रण चित्रों में व गीतों में खुब हुआ है और उसके कार्यों को सराहा गया है । लोगों की जीवन शैली में पानी के प्रयोग का तत्व निर्णायक रहा है और इस समस्या को सुलझाने का सोच भी सामाजिक व आर्थिक कार्यशैली में रहा है । पानी ने किसी अन्य तत्व की तुलना में मानवीय व सामाजिक सम्बन्धों एवं तनाव की नीव डाली है । उस शासक व महाजन को सराहा गया है जिसने तालाब खुदवाये तथा कुओं का निर्माण कराया है । रेगिस्तान में कुओं एवं बावड़ियों पर बनी आकर्षक मीनारें यहाँ की जीवन शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं । यहां के विशाल पशुधन की रक्षा करना एक अन्य ज्वलन्त सामाजिक प्रश्न रहा है । बल्कि मानव व पशु के जीवन की गतिविधियाँ यहां एक दूसरे की पूरक रही हैं मानव ने अपने जीवन की ही नहीं बल्कि पशु के जीवन की सुरक्षा के लिये प्रार्थना एवं अर्चना की है । लोक देवताओं की अराधना में यह बात स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आयी है ।

22.09 विशिष्ट सम्बोधन

राजस्थानी लोग लम्बे समय से एक गठित सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत अपने जीवन की गतिविधियों को आयोजित करते आये हैं इस कारण उनके सामाजिक स्तर पर सम्बोधन भी कुछ विशिष्ट प्रकार से हैं । जैसे राजा या शासक को अन्नदाता या ' अंता' कहने की परम्परा रही । इस कारण आज भी हुक्मरानों को इसी शैली में सम्बोधित किया जाता । तथा प्रशासकीय वर्ग को अभिवादन के लिए 'खमा घणी ' तथा बातचीत में अर्थ को समझने के लिये हाँ के स्थान पर ' हुकुम ' शब्दों का प्रयोग होता है । बच्चों व दामाद को कुंअर साहब कहने की प्रथा है । जातीय स्तरीकरण के विभेद को भुलाते हुए मोहल्ला व गाँव वासी को काका या बाबा कहकर सम्मान दिया जाता है । " धणी " शब्द का भी प्रचलन है प्रजा का राजा ' धणी ' या स्वामी है और पशुओं का ' धणी ' किसान या ग्रामीण है । उपनाम देने की प्रथा का प्रचलन भी खूब है । विशेषकर नगरों में इसका बड़ा चलन है । व्यक्ति की सूरत, उसकी सेहत, आदतों, व्यवहार, कार्यशैली, उपलब्धियों के संदर्भ में कई प्रकार के उपनाम दिये जाते हैं । पक्षियों व पशुओं के उपनाम भी चर्चा में रहते हैं । स्थिति यह बन जाती है कि व्यक्तियों के असली नाम गायब हो जाते हैं तथा उपनाम से उनका परिचय होता है ।

22.10 अंधविश्वास

राजस्थानी समाज अन्धविश्वासों से जकड़ा हुआ है । मन्त्रतन्त्र, जादू-टोना, भूत प्रेत के विचार से सामान्यत: लोग मुक्त नहीं हैं । साधारणतया लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये जादू-टोना, तन्त्र-ताबीज आदि चीजों का आश्रय लेते हैं । उदाहरणार्थ, पुत्र प्राप्ति, सम्पत्ति, उन्नति, शत्रु का नाश, भूमि प्राप्ति आदि विषयों के लिये इनका पालन करते हैं । सौत का डाह भी एक अन्य सामाजिक कारण है । शकुन-अशकुन से समाज के सभी वर्ग प्रभावित हैं और विशेषकर लक्ष्य की प्राप्ति के लिये इनका बड़ा मान करते हैं । इन सभी बातों को सम्पादित करने वाले लोगों की समाज में बडी प्रतिष्ठा है । आधुनिक काल में इन विषयों का प्रभाव कम हुआ है लेकिन ज्योतिष का क्षेत्र विस्तृत हुआ है ।

22.11 इकाई सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई के अध्ययन में आपने समझा कि किस प्रकार राजस्थान के निवासियों की अपनी एक जीवन शैली है । वह शैली निश्चित रूप से कृषि एवं पशुपालन व्यवसाय में आये उत्पादन के विभिन्न माध्यमों एवं कार्यों तथा धार्मिक एवं लौकिक विश्वासों के कारण स्वरूप उत्पन्न हुई है । यहां पर ढीली-ढाली संघीय व्यवस्था के स्थान पर जब एकीकृत सामन्ती व्यवस्था ने स्थान ग्रहण कर लिया तो उससे भी लोगों की जीवन शैली संचालित एवं सम्पादित होने लगी । आज भी लोगों के बोलने एवं व्यवहार के ढंग में यह स्पष्ट होता है । अन्धविश्वासों ने भी लोगों को जकड़ रखा है तथा आर्थिक क्षेत्र में कम अवसर उपलब्ध होने के कारण लोगों को सांमजस्य स्थापित करने के लिये विनोदप्रिय एवं बातूनी बना दिया है । समय की अधिकता के कारण पर्वों एवं उत्सवों में लीन होने के लिये अत्यधिक अवसर उत्पन्न कर दिये

22.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये ।

(1) राजस्थान में व्यक्तियों के लिये उपनाम शैली पर टिप्पणी करिये ।

(2) 'भद्र' से क्या तात्पर्य है ।

(3) किन मुख्य कारणों से प्रदेशवासी अन्धविश्वासों से जकड़े हैं ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

(1) धार्मिक संस्कारों ने यहां के जीवन को किस प्रकार व्यवस्थित किया है, समझाइये ।

(2) यहां सामन्ती व्यवस्था ने लोगों को व्यवहार में विशिष्ट सम्बोधन के लिये किस प्रकार प्रेरित किया है ।

(3) प्रदेशवासियों की सायंकालीन बैठकों या रात्रि जागरण की प्रवृति पर टिप्पणी कीजिए ।

इकाई सं. 23 "खानपान"

इकाई संरचना

23.01 उद्देश्य

23.02 प्रस्तावना

23.03 सामान्य भोजन

23.04 शिकार एवं मांसाहारी भोजन

23.05 विशेष व्यंजन

23.06 पिकनिक या गोठ व्यंजन

23.07 उत्सव, पर्व एवं त्यौहार का भोजन

23.08 थाल एवं थाली

23.09 मनुहार

23.10 भोजन का समय

23.11 इकाई सारांश

23.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

23.01 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे कि : -

- राजस्थान में खानपान मात्र जीवन आधार का साधन ही नहीं बल्कि एक सांस्कृतिक मूल्य भी है ।
- प्राकृतिक व सामाजिक वर्गीकरण ने किस प्रकार खानपान में विविधताएँ उत्पन्न की है ।
- विशेष अवसरों एवं पर्वों पर व्यंजनों का क्या महत्व है ।
- खानपान के अपने आचार -व्यवहार एवं माध्यम है जिनसे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन दिग्दर्शित होता है ।

23.02 प्रस्तावना

वैसे तो आपने पाठ्यक्रम प्रथम की इकाई 21 के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति के संदर्भ में खानपान के बारे में ऐतिहासिक क्रम से विस्तृत अध्ययन कर लिया है लेकिन प्रस्तुत इकाई में हम राजस्थान प्रदेश के निवासियों के खानपान की आदतों एवं व्यवहार के विशिष्ट संदर्भ को लेकर आपको जानकारी दे रहे हैं । यह इस कारण भी महत्वपूर्ण है क्योंकि राजस्थान की संस्कृति अपनी खानपान की आदतों के कारण भी अलग से पहिचान बनाती है । राजस्थानी लोग खानपान के शौकीन एवं मनुहार के कच्चे माने जाते हैं । कई बार बाहर के लोगों को यह भ्रम हो जाता है कि ऐसी विषम जलवायु एवं कृषि उत्पादन में अधिक विविधता न होने के कारण यहां का खानपान भी कितना शुष्क एवं वर्णन करने के लायक क्या होगा । वस्तुत: स्थिति विपरीत है । यह सही है कि राजस्थान का अधिक भूमि भाग एक फसल का क्षेत्र तथा कम वर्षा के कारण सब्जियों की प्रचुरता न होने से कई मामलों में अन्य प्रदेशों से पिछड़ा हुआ है फिर भी प्रदेश में जो कुछ भी उपलब्ध है उसको इस प्रकार तैयार करके प्रस्तुत किया गया है कि उसका अपना आकर्षण बन जाता है । शुष्क पत्तियों एवं फलियों की सब्जियों एवं

आहार ने अपनी ही स्वाद छटा बिखेर दी है । पूर्वी भाग एवं हाड़ौती कृषि उत्पाद व सब्जियों मे विविधता है । प्रदेश में व्यापारिक गतिविधियाँ सदैव सघन रहने के कारण सामान का इधर -उधर जाना भी सदैव बना रहा है । यहाँ पशु पालन व्यवसाय मुख्य व्यवसाय बने रहने के कारण दुग्ध उत्पाद प्रचुर मात्रा में हुआ है और उससे कई प्रकार के व्यंजन व मिठाइयों पूरे देश में ख्याति प्राप्त करने के लिये तैयार हुई है । बंगाल के रसगुल्ले को मात करने के लिये मरू प्रदेश के रसगुल्ले सामने आये हैं । दूध, दही एवं घी की असीमित मात्रा ने प्रदेश के त्यौहारों एवं पर्वों की छटा ही निखार दी है । उस समय तैयार किये गये व्यंजनों ने सामाजिक समागम को एक नयी गति व संचार राजस्थान प्रदान किया है । हरी सब्जियों के अभाव में सूखी सब्जियों ने मसालों में लिपटकर एक नया व दीर्घकालीन स्वाद उत्पन्न किया है । घने जंगलों ने मांसाहारी भोजन के लिये अनेक आकर्षण उत्पन्न किये हैं । राजस्थान में शिकार की अपनी कथा हैं इन्होंने विशाल जनजातियों को आहार प्रदान किया है । बाजरा, मक्का, जी ने जहां एक ओर ग्रामीण जीवन को संजीवनी दी हैं वहीं घी में चुपड़कर एक नया स्वाद नगरीय सभ्यताओं को भी दिया है । खारे पानी ने जहां जीवन को एक ओर विषम बनाया है वही दूसरी ओर ऐसे खाद्य पदार्थ उत्पन्न किये हैं जो अपनी नमकीनता में कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते हैं । साजी की उपलब्धता ने विलक्षण पापड़ों को खाने का स्थायी अंग बनाया है । खानपान के क्षेत्र में इस कुशल संयोजन रूपरेखा मे एक अपना ही आचार-व्यवहार एवं मनुहार की शैली को उत्पन्न किया है जो राजस्थानी जीवन की विलक्षणता कहलाता हैं

23.3 सामान्य भोजन

राजस्थान प्रदेश के निवासियों द्वारा लिये सामान्य आहार को हम तीन वर्गों में बांटकर सहजता से समझ सकते हैं । यद्यपि यह वर्गीकरण आज के जमाने में बढ़ते हुए मध्यमवर्ग और मध्यम वर्ग के ग्रामीणों के भोजन की ओर बढ़ते रुझान के कारण काफी कमजोर सा है फिर भी परम्परागत रूप से समझने के लिये ऐसा प्रयास किया गया है । शहर एवं कस्बे में रहने वाले लोग परम्परागत ढंग से गेहूँ, बाजरा, मक्का, जौ, चावल, दाल, सब्जियाँ, दूध, दही, छाछ, हलवा, खोया की मिठाइयाँ, बेसन की मिठाइयाँ व अन्य उत्पाद, जलेबी, लड्डू, खाजा, पापड़, मठरी एवं अचारों में केर, सांगरी व नींबू तथा आम के आचार का प्रयोग करते रहे हैं । लहसुन, प्याज व मिर्च का प्रयोग भी अधिकाधिक रहा है । शाम के खाने में बाजरा व मोठ की खिचड़ी का भी सेवन रहा हैं । बेसन के गट्टों, सांगरी, एवं ग्वार फली की सब्जी तथा कढ़ी लापसी स्थानीय विशेषताओं के आकर्षण हैं । राजस्थान में दक्षिणी - पूर्वी क्षेत्र के कुछ भागों को छोड़कर चावल का प्रयोग कम रहा है । अब दिन प्रतिदिन चावल का सेवन बढता जा रहा है । आजकल गेहूं का प्रयोग भी अत्यधिक हो गया बल्कि खाने की स्थायी वस्तु हो गया है और लोग बाजरी व जौ का प्रयोग कम से कम या स्वाद के आकर्षण के लिये करने लगे हैं । दूध, दही, व घी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है व सब्जियों में मिर्च का मेल अत्यधिक है । संभवत: मिर्च एवं घी का प्रयोग एक अच्छा स्वास्थ्यवर्द्धक मिलान है ।

ग्रामीण क्षेत्र में बाजरा, जौ या जौ- चना (बेजड़), गेहूँ -चना (गोजरा) के आटे की रोटियाँ तथा दही, दूध के साथ मौसमी सब्जियों से लोग भोजन करते रहे हैं । प्याज -बाजरा व जौ की रोटी ग्रामीण गरीबों का खाना हमेशा बना रहा है । आजकल ग्रामीण संभाग में भी गेहूँ एवं चावल का प्रयोग विशेषकर

समृद्ध लोगों में बढता जा रहा है । छाछ - राबड़ी का सेवन तो आम आदत है । मरू प्रदेश में राबड़ी प्रयोग अधिक है जो दही से निर्मित है । मरू प्रदेश में एक समय तो यह कहावत थी कि पानी के स्थान पर दूध या घी का पान कर लो । भोजन में घी का अधिक उपयोग शक्ति बढाने के हिसाब से भी देखा जाता रहा है । मौसमी सब्जियों का तात्पर्य क्षेत्र विशेष की सब्जियों से है । हाड़ौती संभाग में भी सब्जियों की कमी नहीं रही लेकिन मरू प्रदेश में फली - काकड़े की सब्जी मौसमी सब्जी के रूप में प्रयोग में लायी जाती रही । ग्रामीण अचल में आटे के हलवे का भी प्रचलन खूब रहा है । राजस्थान के फलों में खरबूजा, तरबूज, मतीरा, गूंदीयां, बेर का स्थानीय स्तर पर सेवन खूब रहा है बल्कि स्थानीय फलों की विशेषता के कारण पर्वों पर भी इनको भेंट चढाया जाता रहा है ।

जनजाति क्षेत्र के लोग मक्का, बाजरा, मालिचा के साथ -साथ जंगली जानवरों तथा पक्षियों के मास का सेवन भी करते रहे हैं । जंगली फल व फूल भी इनके भोजन का भाग रहे हैं । राजस्थान में अकाल की वीभिषिका बहुधा रही है और उस अवस्था में जनजाति व ग्रामीण परिवेश के लोग सागरी, बेर के पत्तों पर भी जीवन का निर्वाह करते रहे हैं । राजस्थान पशुओं की घास के लिये भी बहुत विख्यात रहा है । यहां हल्की सी बरसात में भी अच्छी घास हो जाती है और वह पशुओं के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती है ।

23.04 शिकार एवं मांसाहारी भोजन

राजस्थान इतिहास के प्रसिद्ध लेखक कर्नल टॉड न यहां के पूर्व शासकीय वर्ग के बारे मे लिखा है कि राजपूत शिकार करते हैं एवं सूअर, हिरण, बतख, बकरा, खरगोश अन्य जंगली जानवरों का मांस खाते हैं । हमने इसी इकाई - समूह की इकाई सं. 27 में शिकार के बारे में पर्याप्त विवरण दिया है । मांसाहारी भोजन अधिकतर हिरण एवं सूअर का ही हुआ करता था आजकल 'चिकन ' एवं मछली ने भी रसोई में प्रवेश कर लिया है । तीतर एक अन्य शौक की श्रेणी हैं । मांसाहारी भोजन की बहुधा अलग रसोई होती है और मांस के साथ - साथ लहसुन , प्याज व कचरी का प्रयोग भी खूब होता है । वैष्णव व जैन धर्म के बढते प्रभाव कारण मांस न खाने के दिन भी निर्धारित होने लगे है अधिकतर लोग नवरात्रि के नौ दिनों, मांगलवार, गुरु पूर्णिमा व अन्य पर्वो पर मांसाहारी खाने से परहेज करते हैं । मांसाहारी भोजन को तैयार करने मे मुगल प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता हैं । मांसाहारी भोजन के साथ शराब के सेवन का भी प्रचलन हैं । देशी -विदेशी शराबों के अतिरिक्त राजस्थान की ' आशा ' व 'केसर कस्तूरी ' की भारी मांग रही है । आजकल जातिगत आधार पर मांसाहारी भोजन करने वालों को वर्गीकृत करना कठिन है परन्तु परम्परागत तरीको से यह माना जाता है कि ब्राह्मण व वैश्य इससे दूर रहते हैं । जनजाति क्षेत्र के अधिकांश लोग मांसाहारी है एवं जंगलों मे जाकर अपना शिकार एवं भोजन प्राप्त करते हैं । मुसलमानों में मांस का सेवन आम बात है । मांसाहारी पकवान जीरा, लौंग, इलायची आदि मसालों से तैयार किये जाते थे । जैसाकि लिखा जा चुका है इन व्यंजनों के साथ शराब, अफीम, कसूंबा आदि चीजों का नशा भी किया जाता है ।

23.05 विशेष व्यंजन

राजस्थान प्रदेश अपने विशेष व्यंजनों के कारण न केवल देशभर में चर्चित हैं बल्कि विदेशों में भी जाना जाता है । पशुपालन व्यवसाय के एक मुख्य व्यवसाय होने के कारण यहां दुग्ध उत्पादों की भारी मांग है और आजकल पैकिंग की विशेष व्यवस्थाएँ होने के कारण पूरे देश में इसकी आपूर्ति है । उत्सव एवं पर्वों पर व्यंजनों का विशेष उत्पादन किया जाता है । इन सभी विशेषताओं का यहां संक्षेप में विवरण इस प्रकार दिया जा रहा है । चूंकि राजस्थान की मिठाइयों की विशेष चर्चा सर्वत्र है इस कारण सर्वप्रथम हम उनके बारे में जानकारी लेंगे । प्रदेश का पश्चिमी मरू प्रदेश अपने दुग्ध उत्पादन और दुग्ध से बनी मिठाइयों के कारण विख्यात हैं । बीकानेर के रसगुल्ले व अन्य छीन की मिठाइयाँ भारत भर में भेजी जाती हैं । बीकानेर एवं जोधपुर बल्कि सम्पूर्ण मारवाड़ -शेखावटी प्रदेश इन मिठाइयों के कारण प्रसिद्ध हैं । बीकानेर के रसगुल्लों की कहानी बड़ी रोचक है । कहते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जब जापानियों ने पूर्वी भारत पर आक्रमण कर दिया तो आसाम एवं बंगाल से बहुत से मारवाड़ी व्यापारी अपने देश लौट आये । उन्हें बंगाली मिठाइयाँ और विशेषकर रसगुल्ला बहुत पसन्द था । मरू प्रदेश में दूध की कमी नहीं थी तो उन्होंने रसगुल्ला उत्पाद को प्रोत्साहन दिया एवं शनै :शनै बीकानेर रसगुल्लों का पर्यायवाची बन गया तथा भारत के बाजारों में बंगाली रसगुल्लों को टक्कर देने लगा । बीकानेर का एक अन्य उत्पाद जिसने उसे राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय पहचान दी वह है भुजिया या नमकीन । क्षेत्र के मोठ व नमकीन पानी ने भुजिया का एक अलग ही स्वाद बना दिया । आज भारत के लगभग सभी बड़े नगरों में बीकानेरी भुजिया की दुकानें हैं । इसी प्रकार बीकानेर पापड़, बड़ी एवं सफेद मिश्री की अपनी अलग पहचान व मांग है । अब तो ये सभी उत्पाद उद्योग की श्रेणी में आने लगे हैं । बीकानेर के पास सरदारशहर के पेड़ों की भी अपनी अलग पहचान है । जोधपुर के दूध के लड्डू की कोई समता नहीं है । जोधपुर भी मिठाइयों का घर है और उसकी नमकीन स्वाद मिर्ची के पकोडों में है । जोधपुर की मावे की कचौड़ी की सर्वत्र मांग है और अलग से पहचान है । मारवाड़ विशेषकर सरदारशहर की 'फिनी' भी बहुत स्वादिष्ट है ।

राजस्थान की राजधानी जयपुर के 'घेवर ' सर्वत्र चर्चित है । यह घेरदार मिठाई तीज के त्यौहार के अवसर पर विशेष रूप से बनायी जाती है एवं बाहर भेजी जाती है । राजस्थान में गणगौर एवं तीज के पर्व पर बहिन - बेटी की ससुराल घेवर भेजना आवश्यक सा माना जाता है । अजमेर की जलेबी की अपनी धूम है । हाड़ौती का 'कत (कत बाफला) ' अपनी विशेषता रखता है । कत साधारणतया गेहूं के आटे से बना है और आजकल इसमें अन्य आटे भी मिलाये जाते हैं । अलवर के मावे की मिठाई के अपने गुण है व चारों ओर मांग है । भरतपुर में भी मावे का ही अधिक प्रचलन है । हाड़ौती विशेषकर कोटा में कचौड़ी की जितनी खपत है उतनी किसी अन्य नमकीन या मिठाई की नहीं । बहुधा कचौड़ी की दुकानों पर कतारें लगी देखने को मिलती हैं । बांसवाड़ा व उसके आसपास बागड़ क्षेत्र में मावे से निर्मित मावा बाटी खाने में बहुत प्रसिद्ध हैं ।

इस छोटी सी इकाई में सभी स्थलों की व्यंजनों की विशेषता का विवरण देना कठिन है । परन्तु यह सिद्ध है कि प्रदेश निवासी खानपान के प्रति विशेष शौकीन हैं ।

23.06 पिकनिक या गौठ व्यंजन

राजस्थान प्राकृतिक विषमताओं में जकड़ा रहने के कारण मौसम में जब भी सुहानापन आता है यहां के निवासी प्रकृति के खुले वातावरण में घूमने एवं वहां जाकर खाने -पीने को मचल उठते हैं । गरमी में तपने वाली रेत जिस पर दिन में पैर रखना भी कठिन होता है । ठण्डी व सुहानी होने पर मन को भाने लगती है । वर्षा ऋतु में राज्य में तालाब भर के जाते हैं, नदियाँ पूरे वेग से बहने लगती है व धरा हरी-भरी होकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने लगती है । प्रदेशवासियों को विशेषकर वर्षा ऋतु में पिकनिक या जिसे गोठ कहा जाता है, किसी रमणीक स्थल पर सामूहिक रूप से जाकर मनाने का विशेष चाव है । यह भावना मरूप्रदेश, अरावली व पठारी क्षेत्र में समान रूप से देखने को मिलती परम्पराओं है । स्वाभाविक है कि ऐसे अवसर पर खाने-पीने का भी विशेष प्रबंधन होता है एवं लोगों के 'स्वाद ' का भी ध्यान एवं रखा जाता है । पहले लोग लड्डू एवं मिठाइयाँ साथ ले जाते थे तथा पूड़ी-सब्जी पिकनिक स्थल पर तैयार करते थे । रूपरेखा लड्डू-पकौड़ी का भी खूब प्रचलन था । मरूप्रदेश में दाल के हलवे को भी तैयार किया जाता था । खाना पत्तलों में खाए जाता था और पंगत (पंक्ति मे बैठना) बैठती थी । हलवाई भी जाते थे और लोग स्वयं भी मिलजुलकर तैयार करते थे । खुले चूल्हे में भोजन तैयार करने का अपना ही आनन्द होता था । आजकल धीरे - धीरे शेखावटी क्षेत्र के 'दाल - बाटी -चूरमा ' ने गोठ के स्थायी भोजन का रूप धारण कर लिया है । आजकल तो पूर्वी राजस्थान बल्कि हाड़ौती क्षेत्र में तो इसी खाने की महिमा है । चाहे आप चन्द्रभागा नदी के तट पर चले जायें या चम्बल के किनारे अथवा जेतसागर की पाल सभी जगहों पर दाल -बाटी चूरमा है । रणथम्भौर के अभ्यारण्य में भी मौज के बाद खाना यही है । बाटी वस्तुतः खुले अंगारों में गोल गोल सेकी हुई रोटी या केक है चूरमा भी आटे चीनी घी का संयुक्त मिठास है । यह खाना बड़ी सहजता से कुशलतापूर्वक बाहर बनाया जा सकता है ।

23.07 उत्सव, पर्व एवं त्यौहार का भोजन

आपने अलग इकाई में अध्ययन किया है कि राजस्थान में उत्सव, पर्व एवं त्यौहारों की एक लम्बी श्रृंखला खला है और प्रत्येक ऐसी घटना बिना व्यंजनों को बनाये व परोसे कुछ भी नहीं है । ऐसे अवसरों पर पारिवारिक मिलन होता है एवं सामाजिक समागम भी होता है राजस्थान में त्यौहारों एवं पर्वों का भोजन 'लापसी ' है । दीवाली, होली, दशहरा पर 'लापसी ' परोसी जाती है । लापसी गेहूँ के दलिये से बनती है और इसमें गुड़ की मिलावट अच्छी मानी जाती है । लापसी के साथ चावल भी बनाये जाते हैं । आजकल तो राजस्थान में चावल खाने का रिवाज बहुत बढ़ गया है । वरन् कुछ वर्षों पूर्व तक यह त्यौहार का ही भोजन था । इस व्यंजन की विशेषता यह है कि इन दिनों गरीब - अमीर, राजा-महाराजा सभी के यहां लापसी पकती है । मरू प्रदेश में बाजरे का उत्पादन अत्यधिक होता है इस कारण स्थानीय पर्वों के अवसर पर बाजरी व मोठ का खीचड़ी या खीचड़ा पकाया जाता है । ' आखातीज ' के दिन सभी गाँव व शहरवासी खीचड़ा खाते हैं । चूंकि राजस्थान में दूध उत्पादन की कमी नहीं है, इस कारण घी भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । लोग लापसी एवं खीचड़ी में घी डालकर आनन्द लेते हैं । गोगा नवमी एवं नागपंचमी के दिन विशेषकर दूध एवं चावल की खीर बनायी जाती है ।

राजस्थान में त्यौहार एवं पर्वों के अवसर पर परिवारवालों द्वारा अपनी बहिनों एवं लड़कियों के घर उपहार भेजने की प्रथाएँ बहुत प्रचलित हैं । इन प्रथाओं को न मानने वालों को उलाहना दिया जाता है । गरीब - अमीर सभी इन परम्पराओं का निर्वाह करते हैं । दीवाली, होली व अन्य त्यौहारों पर तो मिठाई भेजी ही जाती है पर गरमी व सर्दी के मौसम में पर्वों के दिन मौसमी फल भी भेजे जाते हैं । जैसे तीज के पर्व पर घेवर भेजे जाते हैं, निर्जल एकादशी के आसपास मेवे व आम भेजे जाते हैं । सौगातों की यह परम्परा काफी लम्बी है ।

वस्तुत: राजस्थानी परम्पराओं में पर्व एवं व्यंजन के मध्य गहरा संबंध है । दीवाली, होली व अन्य दिनों क्या बनेगा, तय है । शीतला अष्टमी को बासी खाना खाया जाता है । यह खाना एक दिन पहले तैयार हो जाता है और 'बासोड़ा ' कहलाता है । अजमेर उर्स के अवसर पर दूध, चावल, चीनी, मक्खन, मेवे एवं मसालों से विशाल डेग (बड़ी कड़ाई) में मिठाई तैयार होती है एवं ख्वाजा साहिब को श्रद्धा से चढ़ायी जाती है । इसे प्रसाद के रूप में वितरित भी किया जाता है । ईद के दिन मुस्लिम भाई कबाब एवं पासन्द तथा मिठी ईद पर सेवियाँ बनाते हैं । आजकल त्यौहारों एवं गोठों के अवसर पर लोग बाजरे, मक्के की रोटियाँ भी खाते हैं । शादियों एवं पार्टियों में इन रोटियों का चलन केर एवं सागरी की सब्जी के साथ खूब हो गया है । खाने के बाद यहां पान-सुपारी एवं खाटे या हाजमे की गोलियां देना बहुत प्रचलित है । होली -दीवाली के अगले, दिन समाज में लोग एक दूसरे के यहां अभिवादन (राम -राम) करने जाते हैं तो इन चीजों से उनका स्वागत किया जाता है ।

23.08 थाल, थाली

इस इकाई में व्यंजनों के साथ उन भोजन के पात्रों या बर्तनों का उल्लेख करना भी आवश्यक है जिनके माध्यम से उनकी पहचान करायी जाती है । यहाँ पकाने के या भोजन तैयार करने के बर्तनों से तात्पर्य नहीं है बल्कि भोजन परोसने के बर्तनों से है क्योंकि वे भोजन के साथ जुड़कर एक सांस्कृतिक इकाई का निर्माण करते हैं । प्रदेश में थाली या थाल का एक विशेष महत्व है । भोजन थाली में कटोरियों के साथ पुरसा जाता है और थाली जितनी बड़ी और उसमें जितनी खानपान

अधिक कटोरिया की संख्या होती है व्यक्ति व परिवार उतना ही समर्द्धशाली एवं शक्तिवान समझा जाता है । स्वाभाविक है। कि सब कटोरिया अलग अलग सब्जियों एवं तरल मिठाइयों से भरी होती है । छप्पन भोग के विचार का इन थालियों व कटोरियों से सीधा संबंध है । राजा व ठाकुर चांदी की थालियों में खाना खाया करते थे और अनेक अवसरों पर खाने के बाद थाली का दान कर देते थे । राजमहलों में बड़ा थाल बीच में रखकर खाना खाया जाता था । थाली में साथ बिठाकर खाने से रक्त व जाति की समीपता घोषित की जाती थी । सगे सम्बन्धियों को प्रगाढता का परिचय दिया जाता था । थाली का पहला कौर सगे सम्बन्धियों के लिये होता था और थाली की मनुहार का अपना अलग सांस्कृतिक महत्व था । यह विश्वास दृढ़ था कि थाली में झूठन नहीं छोड़नी चाहिए ।

थाल थाली का अदान -प्रदान सामाजिक रिश्तों को नयी पहचान व पुराने सम्बन्धों में दृढ़ता प्रदान करता था । उत्सवों एवं पर्वों पर कर्मचारी अधिकारियों के घर मिठाइयों के थाल भेजा करते थे । शासकीय वर्ग की ओर से पुण्य व दान हेतु या किसी को पुरस्कृत करने हेतु भरी थालियाँ भेजी जाया करती थी । सगाई -शादी के अवसर पर थाल व थालियों को मिठाइयों, फलों एवं कपड़ों से भरा जाता

था और जालीदार व रेशमी कपड़ों से ढका जाता था । रस्मों को पूरा करने के लिये थाल को मध्य में रखा जाता था । बल्कि सभी संस्कारों एवं परम्पराओं के निर्वाह में समाज के सम्मुख थाल रखकर आवश्यक क्रियाएं सम्पन्न की जाती थी । पर्वों पर लड़कियों की ससुराल में मिठाई एवं फलों से भरकर थालियाँ भेजी जाती थी । थालियाँ की विषय संख्या शुभ मानी गयी है थालियाँ स्टील, लोहे, कांसे बल्कि जस्ता- ताबा की मिश्रित धातु से बनी होती है और स्वर्ण व रजत धातु की थालियों को विशेष श्रेणी में रखा गया है । थाली में साथ बैठने के कुछ नियम कायदे भी होते थे । बराबर की रिश्तेदारी या संबंधी को एक साथ थाली में बिठाते थे, जैसे भाई-भाई, साला-जीजा, चाचा, पिता -श्वसुर, आदि आदि । महाराणा प्रताप के काल का एक किस्सा चर्चित है कि जब आमेर के मानसिंह उनके यहां खाने पर पधारे तो महाराणा ने उनके साथ बैठने को अपने पुत्र को भेज दिया । कारण यह था कि उस समय मानसिंह के पिता जीवित थे । लेकिन मानसिंह ने मुगल सैनापति होने के नाते इसे अपना अपमान समझा ।

23.09 मनुहार

राजस्थानी खानपान की बात उससे जुड़ी सांस्कृतिक मान्यताओं को जाने बिना अधुरी है वैसे तो भारतीय संस्कृति में ही अतिथि देवताओं के समान होता है, समझा गया है लेकिन इसी संदर्भ में राजस्थान की बात कुछ निराली भी है । यहां सामान्यत: अतिथि का सम्मान होता ही है और उसका एक सशक्त माध्यम उसको भोजन करवाकर तृप्त करने से भी है, पर भोजन कराते समय जो मधुर व मन से निकला आग्रह किया जाता है, उसकी छटा ही निराली है । कोई मेहमान कम खाना खाये या इच्छा से न खाये, उसे मेजबान का अपमान समझा जाता है । इसके अतिरिक्त किसी भी घड़ी आया मेहमान बिना खाना खाये नहीं रहेगा । प्राचीन परम्परा थी कि गाँव में कोई अतिथि आता था तो गांव के पंच उसको किसी के घर ठहराने की व्यवस्था करते थे । अधिकतर मामलों में अतिथि के समाज के ही व्यक्ति के यहां वह व्यवस्था होती थी । उस मेहमान या पावणा को गांव का मुखिया या ठाकुर भी भोजन के लिये आमंत्रित करता था । गाँव का दामाद या संबंधी आने पर अनेक घरों में वह भोजन के लिये बुलाया जाता था । जिस गाँव या स्थान पर जितनी पावणे की खातिरदारी उतना ही नाव का यश । पर्वों पर तो सम्बन्धियों को भोजन के लिये न्यौता भेजा ही जाया करता था । एक थाली लगाकर जब संबंधी खाने को बैठते थे तो पहले प्रत्येक अपने हाथ से प्रथम कौर एक दूसरे को दिया करते थे और सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को दर्शाया जाता था । जब खाना समाप्त हो जाता था तो पुन: वे संबंधी जो थाली में साथ नहीं बैठते थे फिर खाने की मनुहार करने आते थे और खिलाते थे । राजस्थानियों के लिये यह एक विशेष चर्चा है कि वे मनुहार में कच्चे हैं अर्थात् मनुहार करने पर मना नहीं करते हैं बल्कि खा लेते हैं । सम्बन्धों में मनुहार की यह सांस्कृतिक परिधि होती है कि रिश्तेदार बिना मनुहार आये खाना प्रारम्भ नहीं करते हैं । बल्कि कई बार ऐसा भी देखने में आया है कि मनुहार में कोई कमी रह जाने के कारण संबंधी नाराज होकर खाना छोड़कर चले जाते हैं । रूठों को मनाने के लिये सामूहिक मनुहार की जाती है । जब संबंधी लोग साथ बैठकर व्यंजनों का आनन्द लेते हैं तो घर एवं पड़ौस की स्त्रियाँ पास के स्थल पर बैठकर हंसी ठिठौली के गीत गाती हैं ।

23.10 भोजन के समय

साधारणतया राजस्थानी दिन में दो बार मुख्य भोजन करते आये हैं । सुबह एवं शाम । वैश्य लोग सूर्य डूबने से पूर्व भोजन करना पसन्द करते हैं । दोपहर में भी हलका भोजन दोपहरी के नाम से करते है । शासकीय व समृद्ध लोगों के एवं संस्कृति खाने देर रात्रि तक चलते रहते हैं । अब तो धीरे - धीरे शहर एवं कस्बों में तो ब्रेक फास्ट, लंच एवं डिनर की परम्परा आती जा रही है । अधिकतर राजस्थानी आज भी फर्श पर बैठकर नीचे पाटा लगाकर या वैसे ही थाली रखकर खाना रूपरेखा पसन्द करते हैं । वैसे डायनिंग सेट का प्रचलन भी तेजी से बढ़ रहा है । धार्मिक प्रभाव में लोग व्रत परम्पराओं का भी पालन करते हैं व ऐसे उदाहरण है कि निर्जल एकादशी को लोग जब तापमान 45° से अधिक ही होता है, बिना खाये-पिये व्रत रखते हैं

23.11 इकाई सारांश

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि राजस्थान खानपान के कारण भी रंगीला कहलाता है । प्राकृतिक विषमता से जूझते हुए भी यहां के निवासियों ने अल्प साधनों को भी अपने स्वाद के अनुरूप अलंकृत करके उन्हें विस्तृत एवं विलक्षणीय बना दिया है । आहार एवं व्यंजनों में भोगोलिक एवं सामाजिक दृष्टि से विभेद है । पश्चिमी क्षेत्र में दुग्ध उत्पादनों की बहुलता है वहीं पूर्वी क्षेत्र में हरे फलों एवं सब्जियों की । भोजन शासकीय एवं सर्मथ वर्गों का अलग था वहीं ग्रामीण परिवेश एवं जनजातियों का भिन्न । लेकिन अब शनै : शनै सर्वत्र बाजरा, मक्का व जौ का स्थान गेहूं एवं चावल ने ले लिया है साथ ही परिवहन के साधनों में गति आने से हरे फलों एवं सब्जियों की पहुँच रेतीले गांवों में भी हो गयी है । जनजातियों में भी परम्परागत आहार में परिवर्तन आ गये हैं । हाँ, पर्वों पर सभी वर्गों में लापसी अभी भी बनती है व खीचड़ा भी तैयार होता है । अब शहरी लोग भी बाजरा एवं मक्का भी शौक से खाते हैं । राजस्थानियों में थाली के भाई -चारे एवं कुटुम्बीय भावना का अभी भी संचार हो रहा है तथा मनुहार का सांस्कृतिक व मानसिक महत्व भी बरकरार है गोठ की परम्परा सघन हुई है पर अब उसमें स्थायी विशेषता दाल-बाटी-चूरमा की हो गयी है । शिकार पर प्रतिबन्ध लग गये हैं लेकिन मांसाहारी भोजन की मांग कम नहीं हुई है । तीज-त्यौहार पर सामाजिक समागम वैसा ही है और सौगातों की सूची मिठाई के डिब्बों में बढ़ती जा रही है । गट्टे की सब्जी, सांगरी के आचार, बीकानेरी नमकीन (भुजिया), जयपुर के घेवर, जोधपुर के रबड़ी के लड्डू राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढती मांग के विषय बने हुए हैं । यह ठीक ही कहा गया है कि किसी भी समाज की आहार आदतों से उसकी सांस्कृतिक पहिचान की जा सकती है ।

23.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) **निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये : -**

(1) राजस्थानी भोजन में 'लापसी ' का क्या महत्व है ।

(2) मुसलमान अपने पर्वों पर किस प्रकार के व्यंजन बनाते हैं ।

(3) गोठ पर तैयार किये गये व्यंजनों का विवरण दीजिये ।

(4) राजस्थान के निवासियों के भोजन के समय पर अपने विचार लिखिये ।

(ब) **निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये :-**

(1) ग्रामीणो का आहार क्या हैं और अब उसमें क्या परिवर्तन आ रहे हैं ।

(2) राजस्थान में उत्सव, पर्व एवं त्यौहार पर कौन -कौन से व्यंजन बनाये जाते हैं ।

(3) राजस्थान के पशुपालन व्यवसाय ने यहां के निवासियों की भोजन आदतों को किस प्रकार प्रभावित किया है ।

(4) थाली एवं मनुहार से क्या प्रयोजन है ।

इकाई सं. 24 "पोषाक"

इकाई संरचना

24.01 उद्देश्य

24.02 प्रस्तावना

24.03 पुरुषों के पहनने के वस्त्र

24.03.1 पगड़ियाँ

24.03.2 अद्योवस्त्र

24.04 स्त्रियों के वस्त्र

24.05 जूतियाँ

24.06 आभूषण

24.07 स्त्रियों के आभूषण

24.08 इकाई सारांश

24.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

24.01 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी उन तथ्यों की जानकारी ले पायेगा जिसमें प्रदेश के लोगों की परम्परागत पोषाकों का विवरण होगा, विशेषताएं होगी, उनकी विशिष्ट पहचान होगी, वातावरणीय मेल होगा, व्यक्तित्वों के आकर्षण में वृद्धि होगी तथा पुरुष एवं स्त्रियों के आभूषणों का उल्लेख होगा । पोषाकों की बनावट, उसके रंग, पहनने की विधियाँ, जलवायु के अनुसार उत्पन्न विविधताएँ प्रदेश की संस्कृति की विलक्षणता का परिचय देगी । यद्यपि पाठ्यक्रम प्रथम की इकाई सं. 21 में भारतीयता के संदर्भ में विस्तृत विवरण दिया गया है लेकिन इस इकाई में प्रदेश की अपनी अलग से पहिचान होगी ।

24.02 प्रस्तावना

राजस्थानवासियों को राजनैतिक उथल पुथल एवं विषम भौगोलिक परिस्थितियों का सदैव सामना करना पड़ा है । यहां के जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर एवं बाड़मेर क्षेत्र में विस्तृत रेगिस्तान रहा है । उदयपुर, सिरोही, आबू डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ का क्षेत्र पहाड़ी तथा जयपुर, अलवर, भरतपुर, कोटा, करौली एवं धौलपुर का क्षेत्र मैदानी रहा है ।

क्षेत्रीय विशेषता एवं पेशेगत धंधों के आधार पर विभिन्न जातियों का यहां निवास रहा है । इन जातियों ने अपने जीवन को रंगमय एवं उल्लासित करने के लिए विभिन्न प्रकार के रीति रिवाजों को मनाने की परम्पराओं का निर्वाह किया । त्यौहार, मेले, उत्सव आदि इनके जीवन को जीवन्त रखने के माध्यम बने । प्रकृति की शुष्कता ने इन्हें रंग रंगीले तथा चटक रंगों के विभिन्न प्रकार के पहनावे एवं आभूषणों से अपने को अलंकृत करने तथा कई प्रकार के व्यंजनों का प्रयोग अपने खान -पान में कर यहां की सांस्कृतिक विरासत को संजोए रखा । प्राकृतिक वातावरणानुसार यहां के लोगों ने विभिन्न

प्रकार के व्यंजनों एवं वस्त्राभूषणों का प्रयोग कर अपने जीवन को खुशहाल बनाने की चेष्टा रखी है । यहाँ की जातियों की विविध वेषभूषा एवं खानपान की रुचिकर परम्परा ने भारतीय संस्कृति पर विशिष्ट छाप छोड़ी है ।

प्राचीनकाल से अब तक मानव की यह स्वभाविक प्रवृति रही है कि वह विविध प्रकार के वस्त्र एवं आभूषणों से अपने को संवारे (मोहित) रखे । राजस्थान में विकसित विभिन्न चित्रशैलियों से यहां के वासियों की पोशाकों एवं आभूषणों का पता चलता है । यहां के चित्र सामाजिक वातावरण एवं भौगोलिक वातावरणानुसार स्त्री, पुरुषों के पहनावे एवं श्रृंगार की पद्धति का दिग्दर्शन कराते हैं । मध्यकाल में रचित साहित्य, समकालीन चित्रित हस्तलिखित ग्रन्थ सम्पदा, मूर्तिशिल्प, राजकीय तथा निजि संग्रहालयों में उपलब्ध विपुल सामग्री के अध्ययन से भी यहाँ के निवासियों के परिधानों के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है ।

मध्यकाल में नरेश, उनके परिवारजन एवं राजवर्गीय लोग बहु मूल्य, साजसज्जा व कसीदाकारी से अलंकृत विविध किस्मों के वस्त्र धारण करते थे । माध्यम वर्ग प्राय: साधारण किन्तु विशेष अवसरों पर कीमती वस्त्र पहनते थे । निम्न वर्ग निश्चित प्रकार के तथा मोटे, सस्ते कपड़ों को प्रयोग में लेते थे । यहां के रंगीले सजीले वस्त्र यहां के निवासियों की सुरुचि के परिचायक रहे हैं ।

24.03 पुरुषों के पहनने के वस्त्र

24.03.1 पगड़ियां

राजस्थान में पुरुष पगड़ी साफा या पोतिया सिर पर बांधते हैं । ये साफे जाति एवं क्षेत्रानुसार भिन्न - 2 तरीकों से बांधे जाते हैं । यहाँ के जोधपुर साफे एवं उदयपुर पगड़ी की विशिष्ट पहचान हैं । राजपूताने के विभिन्न राजवंशो मे भी पगड़ी भिन्न- 2 प्रकार से बांधी जाती थी । जोधपुर राजवंश में खिड़कियां पाग का प्रमुखतया प्रचलन था । यहाँ विजयशाही, अमरशाही, उदयशाही, मानशाही आदि राज नरेशों के नामों से पगड़ी का प्रचलन था । पगड़ियां प्राय: शिखराकार एवं आगे को उठी होती थी । उच्चवर्ग की पगड़ियां स्वर्ण कलंगी से सुशोभित रहती थी । पगड़ी पर लगाए जाने वाले सिरपेच एवं कलंगी पर कीमती हीरा पन्ना सम्पन्न वर्ग को इंगित करता था । पगड़ी, पेचा, सोने तथा चांदी के तारों से सुसज्जित किया जाता था । इन तारों से सरपेच, तुर्रा बालाबंदी, लटकन, दुगदगी बनाकर पल पर लगाई जाती थी ।

हाड़ौती एवं उदयपुर में साफा पेचों की पगड़ी होती है । जयपुर की पगड़ियों में बलदार लपेटे होते हैं । प्राय: पगड़ी अठारह गज लंबी तथा नौ इंच चौड़ी होती थी । सिर पर पगड़ी के स्थान पर साफा अथवा फेंटा भी बांधा जाता था । नंगे सिर रहना अपशकुनी होता था । रियासतों के महलों, जागीरों तथा रावलों में नंगे सिर वाले व्यक्ति का प्रवेश वर्जित था । पगड़ी के ऊपर से लांगना, ठोकर देना तथा उसे नीचे रखना अपमानजनक माना जाता है ।

वर्षा ऋतु, शीलकाल, ग्रीष्मकाल में विविध रंगों के साफे बांधे जाते थे । इन रंगों में गहरा हरा, कसुम्बी तथा कुकंम रंग प्रमुख था । तीज के दिन बहु रंगी लहरिया साफा एवं दशहरे की सवारी के समय स्वर्ण के धागों से बना फूल पत्ती वाला साफा, होली के त्यौहार पर सफेद तथा पीले रंग का

पेचा बांधा जाता था । ग्रामीण परिवेश की सभी जातियों एवं वर्गों में साफे का प्रचलन अभी तक ज्यों का त्यों है । मारवाड़ में साफे अधिक प्रयोग में लिए जाते हैं परन्तु मेवाड़ में प्राय: सभी व्यक्ति केवल पगड़ी ही पहनते हैं । जोधपुर निवासी महेन्द्र सिंह नगर ने पल -पगड़ियों पर बहुत ही विस्तृत एवं रोचक अध्ययन किया है । पगड़ी बदल भाई, जिस प्रकार राखी बांधकर भाई बनाये जाते थे, उसी प्रकार पगड़ी बदलकर भाई बनाये जाते थे । कई ऐतिहासिक वृतान्त है जो जानकारी देते हैं कि स्त्रियाँ मृत पति की पगड़ी के साथ सती हो जाती थी । किसी परिवार में सबसे बड़े वृद्ध की मौत हो जाती थी तो उसके बारहवे दिन पल-दस्तूर किया जाता था । जिसमें उसके बड़े पुत्र को पाग बंधायी जाती थी और वह उस परिवार का मुखिया घोषित हो जाता था । खेतीहर एवं पशुपालन व्यवसाय में जुड़े लोग भी अपनी परम्परागत पगड़ियों को पहनने में सावधान रहते हैं ।

24.03.2 अद्योवस्त्र : -

पुरुषों द्वारा धड़ पर जामा, वागा, अंगरखी, शेरवानी, पहनाने का रिवाज रहा । अंगरखी को बुगतरी भी कहा जाता है । घुटनों तक धोती पहनी जाती थी । नगरों में कोट कमीज आदि पहनने का रिवाज रहा है । मुसलमान व्यक्ति चूड़ीदार पायजामा व अचकन पहनते हैं । शीत से बचने के लिए कम्बल तथा कपड़े का पछवेड़ा काम में लिया जाता है । वागा लम्बी अंगरखी अथवा लम्बे कोट का होता था । जामा कुरतेनुमा किन्तु नीचे पांवों तक चारों ओर घेरदार होता था । जामें का प्रचलन सोलहवीं शताब्दी से है । इसे मुगलों की देन कहा जा सकता है । मुगलकाल में कवाबा, पेशवास आदि प्रकार के कोट पहने जाते थे । जामा के साथ कंधों पर दुशाला डाला जाता था । मध्यकाल में वीरमपुरी दुपट्टा मशहूर था । पैरों में चूड़ी दार ढीला-ढाला पायजामा तथा धोती पहनी जाती थी । वेशभूषा में रूमाल, गुलीबंद, दुपट्टा, फेटा, कमरबंध जांघिया अंगरखी आदि का प्रयोग भी था । अंगरखा बनाने हेतु खीनखाप, अतलस, मिसरु, मलमल, आदि वस्त्र प्रयुक्त थे । सर्दियों में खेस, शॉल, पामडी. दोवड़वा आदि कंधों पर डाले जाते थे ।

राजस्थान के कई क्षेत्रों में एक प्रकार का रिवाज देखा गया है । जिसमें व्यक्ति अपने हाथ में एक प्रकार का लम्बा कपड़ा (गेडी) लकड़ी रखता है । कई व्यक्ति कपड़े को कमर पर बंधा लेते हैं । निम्न वर्ग के लोग अंगोछा भी कंधे पर डालते हैं तथा एक प्रकार का कम्बल ओड़ते हैं जिसे घूघी कहते हैं ।

आधुनिक काल में शहरी लोग कोट, पेन्ट, कमीज, निकर, पायजामा आदि पहनते हैं । ब्रिटिश काल में शहरी क्षेत्रों में टोप, टोपी का प्रचलन भी चल पड़ा था ।

24.04 स्त्रियों के वस्त्र

स्त्रीयों की वेशभूषा में सिर पर ओड़ने हेतु लूगड़ी, ओढ़निया, अधोवस्त्र, के रूप में अंगरखी कांचली, अंगिया, कुर्ती तथा लहंगा घाघरा का बहुतायत से प्रचलन रहा है । स्त्रीयों द्वारा साड़ी एवं जम्फर भी पहना जाता है । अंगिया को कंचुकी, कांचली, कुर्ती चोली आदि नामों से पुकारा जाता है । राजस्थान में राजपूत जाति की स्त्रियाँ अधिकतर कुर्ती, कांचली, लहंगा, ओढनी धारण करती हैं । इस प्रकार के ड्रेस (पोशाक) सम्पूर्ण भारत में राजपूती पौशाक के नाम से प्रसिद्ध हैं । मुस्लिम स्त्रीयां

चोग, सलवार पहनती हैं तथा सिर पर ओढ़नी ओढ़ती है । वर्तमान में साड़ी, ब्लाउज, सलवार, कमीज, घाघरा, कुर्ती तथा ओढ़नी का प्रचलन आम है । ओढ़नी को करी गोटे तथा लप्पे से सजाया जाता है । त्यौहारों तथा तीज के अवसर पर बहुरंगा लहरिया तथा होली के अवसर पर फागठीया पहनने का रिवाज यहां प्रचलित रहा है । मध्यमवर्ग की स्त्रियाँ एक विशेष प्रकार की लालरंग की ओढ़नी जिस पर धागों की कसीदाकारी होती है का प्रयोग करती है, जिसे दामणी कहा जाता है । ओढ़नी के चारों और चांदी के घुंघरू लगाकर सजाए जाने का प्रचलन राजस्थान की गुर्जर जाति की महिलाओं में विशेषत: रहा है । यह रुचिकर बात है कि राजस्थान की महिलाओं की परम्परागत वेशभूषा को देखकर उनकी जाति का पता लगाया जा सकता है ।

उच्च वर्ग तथा सामन्त वर्ग की स्त्रियों के कपड़े बहुमूल्य तथा विभिन्न रंगों तथा किस्मों के होते थे । जिन पर सोने- चांदी के तारों में तारकस्सी का काम किया गया होता था । फाल्गुन माह में तोरुफूला बसंती रंग की, चैत्र में केसरिया एवं वैशाख माह में कसूमल लालरंग की पौशाकें राजपरिवार में रानियां बनवाती थी । ओढ़नियों के विभिन्न प्रकारों में चुनडी, लहरियां, पोमचा, पचरंगा, मोठड़ा विशेष प्रचलन में रहे । पुत्र जन्म के अवसर पर विशेष प्रकार की ओढ़नी धारण की जाती जो पीले रंग की होती तथा उसमें लालरंग की बिंदिया होती थी ।

कुर्ती अंगिया में कांच के टुकड़े जड़ने तथा कसीदाकारी का प्रचलन था । पूर्व में घेर घुमावदार घाघरे का अधिक प्रचलन था । बाद में साधारण लहंगे अधिक प्रचलित हुए वर्तमान में शहरों एवं गांवों की स्त्रीयां साड़ी का प्रयोग भी अधिकांश करने लगी है । कपड़ों पर इत्र एवं गुलाबजल लगाया जाता था । सुहागन स्त्रीयाँ जहां रंग रंगीले चटकीले कोर एवं गोटे लगे वस्त्र पहनती थी । वहीं विधवा स्त्री काली, सफेद एवं पक्के रंगों का वस्त्र प्रयोग में लेती थी । राजस्थान के राजघरानों में रानियों एवं उनके रावले की स्त्रियों के लिए विशेष अवसरों पर कपड़े के कोठार एवं वागों के कोठार से वस्त्र तैयार होते थे । तीज, त्यौहारों पर रानियों द्वारा अपनी सेविकाओं को वस्त्र इनायत करने के उदाहरण भी तात्कालिक विवरणों में देखने को मिलते हैं ।

24.05 जूतियाँ

पुरुषों द्वारा पैरों में जूतियाँ तथा स्त्रियों द्वारा पगरखियां धारण करने का रिवाज रहा है, जो चमड़े से बनायी जाती थी । इन जूते जूतियों पर मखमल का कपड़ा लगाने, फूलपत्ती काढ़ने तथा सलमा सितारों से सजाने की भी प्रथा रही है । जोधपुर, जयपुर, कोटा की जूतियाँ विशेष चर्चा में रही हैं । चमड़े की इन जूतियों के बारे में एक विशेष चर्चा यह है कि प्रारम्भ में पहनते समय यह पैरों में चुभन या दर्द करती हैं परन्तु थोड़े समय बाद वह आरामदायक हो जाती हैं ।

24.06 आभूषण

राजस्थान में जहां स्त्रियाँ आभूषणों का प्रयोग बहुतायत से करती थी वहीं पुरुषों में भी इनका प्रचलन रहा है । गले में काठलां, कान में मोती, अंगुली में अंगूठियां पहनने का रिवाज पुरुषों में रहा है । कुलीन वर्ग के पुरुष हाथों में कड़े, भुजबंध गले में हार, कानों में कुंडल, हाथों में अंगूठियां तथा कमर में करधीनी पहनते थे । नरेशों तथा सामन्तों के आभूषण सोने से निर्मित रत्न एवं कीमती मोतियों

से जड़े होते थे । साधारण वर्ग के लोग प्राय: चांदी अथवा पीतल के आभूषणों का प्रयोग उत्सवादि अवसरों पर किया करते थे ।

तात्कालिक चित्रों, बहियों आदि के अवलोकन से ज्ञात होता है कि नरेश एवं सामन्त अपने शरीर को अलंकृत करने हेतु कीमती से कीमती आभूषण प्रयोग में लेते थे । नरेश वर्ग बेशकीमती हार, मोतियों की माला, कानों में बाली, हाथों में कड़े एवं अंगूलियों में बहुमूल्य हीरे पन्ने कीअंगूठियां धारण करते थे । रत्नों से जड़ित तलवार एवं कटार भी प्रयोग में लेते थे । नरेश एवं सामन्त वर्ग पांवों में विशेष प्रकार की जूतियां (मोजड़ी) जिस पर मखमल, वेलवेट तथा रेशमी धागों एवं कीमती मोतियों का प्रयोग होता था, पहनते थे ।

मध्यकालीन मारवाड़ में आभूषणों का प्रयोग आम था । यहां के पुरुष आभूषणों में कुण्डल, हार, बाजूबंद, मुद्रिका, कानों में लूंग मुरकियां, बाली, झेला, कठंला, हाथों में माणियां, सिरपेच कलंगी आदि का प्रयोग था । राजपरिवार एवं सामन्त जागीरदारों के पावों में सोने का कड़ा पहनने का रिवाज प्रचलित था । किन्तु इसका प्रयोग ताजीमी सरदार और राज्य की ओर से स्वीकृत जागीरदार ही किया करते थे । सोने का कड़ा पहनने की जिन्हें छूट होती । वह ' 'सोना नवेसी ' जगीदार कहलाता । सोने का रिवाज केवल राजपरिवार, सामन्त, जागीरदार व राज्य द्वारा स्वीकृत जाति व लोगों को ही था । अन्य लोगों के सोने के आभूषणों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध था । अत: सोने के स्थान पर वे चांदी व अन्य धातुओं रूपरेखा के आभूषणों का प्रयोग करते थे । इससे अलंकरण के प्रति अनावश्यक होड़ में वृद्धि नहीं होती थी । छोटे बच्चों को भी लूंग, कड़े हांसली, झांझर, पायल आदि आभूषण पहनाये जाते थे । जवाहरखाने की बहियों में अनेक प्रकार के आभूषणों की जानकारी मिलती है ।

24.07 स्त्रियों के आभूषण

राजस्थान में मनाए जाने वाले मेले और त्यौहारों पर महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले रत्नाभूषणों की बड़ी परम्परा रही है । संग्रहालयों में दृष्टव्य मूर्तियों को देखने से पता लगता है कि स्त्रीयों में आभूषण पहनने की परम्परा प्राचीन रही है राजस्थान के परम्परागत आभूषणों की एक विशेष शैली रही है । हालांकि मुगलों और राजपूतों के सम्पर्क से गहनों की बनावट में काफी अन्तर आया है ।

राजस्थान में स्त्रियां अपने वेशभूषा में इतनी सामर्थ्य है कि वे अपने सोलह श्रृंगार से सज्जित होकर नखशिख तक आभूषण धारण करती है । इन आभूषणों के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं : -

1. सिर के आभूषण : स्त्रियों के सिर पर टीका, शीशफूल, रखड़ी, बोरला, सांकली आदि ।
2. कान के आभूषण : कर्णाफूल, बाली, टॉप्स, झुमके आदि
3. नाक के आभूषण : नथ, लोंग, बारी, बलनी आदि
4. हाथ के आभूषण : बाजूबंद, पाट, कड़ा, गजरा, चूड़ी, भुजबन्द, हथफूल, अंगूठी, छल्ला, कूंडी, दामणा आदि जेवर।
5. पैरों के आभूषण : पायल, पायजेब, कड़ा, तोड़ा, बिछिया, छल्ला, अनवट आदि ।

इसी प्रकार कमर में कन्दौरा आदि आभूषणों का प्रयोग विशेष तौर पर स्त्रियों द्वारा प्रयोग में लिया जाता है ।

निम्न वर्ग की स्त्रियां पीतल व तांबे से निर्मित आभूषण पहनती थी । मध्यकाल में दहेज का प्रचलन था । जहां वर तथा वधू पक्ष अनेक सोने के जड़ाऊ गहने बनवाते थे । राजघराने में वस्त्र आभूषणों एवं श्रृंगार प्रसाधन का विशेष शौक था । स्त्रियां हाथों, पैरों में मेहन्दी लगाती, सुगंधित तेल, पुष्प आदि से विविध प्रकार से केश संवारती थी । आखों में सूरमा डालती तथा ललाट पर सुहाग की बिंदी लगाती थी । स्त्रियों को विभिन्न प्रकार के उबटन जो हल्दी एवं तेल को मिलाकर बनाया जाता था, लगाने का प्रचलन है । बालों को धोने के लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री व मुलतानी मिट्टी का भी प्रयोग किया जाता है ।

राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र में भील गरारियाँ एवं मीणा स्त्रियां चांदी एवं सोने के आभूषण बड़े शोक से पहनती है इन आभूषणों में पांवों में चांदी के कड़े, लंगर, कानों में बालियाँ, टोकरियां, सिर पर बोरझेला, बाजूबंद आदि धारण करती है । राजस्थान में स्त्रियाँ ललाट पर बोर बांधती है जो सुहाग का चिन्ह माना जाता है । यहां बीकानेर, फलौदी तथा जैसलमेर क्षेत्र में बड़े - 2 आकार के बोर स्त्रियां बांधती है जिसे बांधने के विविध तरीके काम में लिये जाते हैं ।

24.08 इकाई सारांश

इस इकाई के अध्ययन में आपने पाया कि राजस्थान की जलवायु की विविधता, लोगों के जीवन की शैली, संस्कार तथा परम्परा एवं विश्वासों ने पोषाकों को कितनी श्रेणियाँ प्रदान की है एवं प्रत्येक को अपनी विशिष्टता भी दी है । परम्परागत समाज में पोषाक के माध्यम से व्यक्ति की जाति तथा पर्व, उत्सव व विशेष आयोजन की पहचान की जा सकती है । पुरुष की पगड़ी से उसके निवास के क्षेत्र तथा समाज को जाना जा सकता है । स्त्रियों के परिधान में भी यही विभेद है । जैसे जोधपुर में लोग साफा पहिनते हैं वहीं मेवाड़ में पगड़ी । राजस्थान के निवासियों को चटकीले रंगों के प्रति विशेष लगाव रहा है । जलवायु की भीषणता ने उन्हें एकाकी व नीरस नहीं बनाया है बल्कि उनमें पोषकों एवं उसके के प्रति आकर्षण का भाव उत्पन्न किया है । यहां की जूतियों का भी अपना आकर्षण है ।

24.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये :-

(1) पुरुषों की परम्परागत पोषाक पर टिप्पणी कीजिए ।

(2) राजस्थान की जूतियों का अपना आकर्षण है, समझाइये ।

(3) उत्सवों पर पोषाकों के रंगों में किस प्रकार के परिवर्तन आ जाते हैं, बतलाइये ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये -

(1) राजस्थान की पगड़ियों पर टिप्पणी कीजिये ।

(2) स्त्रियों की पोषाक में विविधता पर अपने विचार लिखिये ।

(3) राजस्थान में स्त्रियों के आभूषणों की अपनी विशेषता है, बतलाइये ।

इकाई सं. 25 "मेले एवं सामाजिक समागम"

इकाई संरचना : -

25.01 उद्देश्य
25.02 प्रस्तावना
25.03 धार्मिक मेले
25.04 देवी पुजा के मेले
25.05 लोक देवताओं के मेले
25.6 सूफी सन्तों एवं पीरों के मेले
25.7 सामाजिक समागम
25.8 इकाई सारांश
25.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

25.01 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह समझ पायेंगे कि

(1) राजस्थान की लोक संस्कृति में मेलों का क्या स्थान है ।

(2) धार्मिक मान्यताओं ने मैलों को क्या स्वरूप प्रदान किया ।

(3) सामाजिक समागम की अन्य गतिविधियाँ किस प्रकार की रही हैं ।

(4) मेलों में समन्यवादी संस्कृति किस प्रकार चरितार्थ हुई है ।

25.02 प्रस्तावना

स्वगर्गीय जगदीश सिंह गहलोत का मत है कि अधिकतर तीर्थ स्थानों में मेले हुआ करते हैं । ' 'यह सही है कि प्राचीन काल से ही प्रमुख तीर्थों पर, निश्चित तिथि पर, मेलों का आयोजन हुआ करता है । आयोजन के लिए हेला देने की आवश्यकता नहीं होती है । मेलों में भाग लेने के लिए रंग बिरंगी पोषाक पहन कर हर आयु वर्ग के स्त्री व पुरुष नाचते गाते आते हैं । वे अपने अराध्य देव की पूजा अर्चना करने के साथ-साथ आवश्यकता की वस्तुओं की खरीददारी भी करते हैं, जो उनके गाँव में नहीं मिलती । मेलों के समान प्रत्येक ग्राम एवं कस्बे में सप्ताह में एक दिन हाट बाजार भी लगता है । लेकिन वर्तमान समय में हाट लगने की परम्परा शनैः-शनैः गौण होती जा रही है, क्योंकि मनोरंजन के अनेक प्रकार के साधन आज उपलब्ध हैं । परन्तु मेलों की लोकप्रियता देश एवं प्रदेश की भौगोलिक सीमाओं के पार बहुत अधिक बढ़ गयी हैं ।

हमने भारतीय संदर्भ में मैलों एवं त्यौहारों के बारे में विस्तृत जानकारी प्रथम पाठ्यक्रम की इकाई सं. 29 में दी गई है । प्रस्तुत इकाई में हम राजस्थान के संदर्भ में इसकी चर्चा करते हैं । मेले विभिन्न प्रकार के हैं । अधिकांश मेले धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत, व्यक्तियों की आस्था की पूर्ति के लिए, तीर्थ स्थानों पर ही आयोजित होते हैं । कुछ मेले पशुओं की खरीद फरोख्त के लिए प्राचीन काल से आयोजित होते रहे हैं । अजमेर का उर्स ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती की मृत्यु के दिन उनकी

स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित होता है । इसमें मुसलमानों के अतिरिक्त भारी संख्या में अन्य धर्मों के लोग भी भाग लेते हैं ।

25.3 धार्मिक मेले

ऐतिहासिक क्रम में राजस्थान प्रदेश में ऐसी अनेक पौराणिक कालीन बल्कि उससे भी प्राचीन काल की घटनाएं हुई है । जिनके कारण आस्था से जुड़े अनेक अवसरों एवं दिनों पर मेले आयोजित होते रहे हैं । ऐसी मान्यता है कि वैदिक इकाई कालीन सरस्वती नदी राजस्थान से होकर ही गुजरती थी लेकिन उसके तटों के तीर्थों की खोज अभी एक ऐतिहासिक विषय हैं । धार्मिक आस्था के मेलों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से हैं -

पुष्कर : राजस्थान ही नहीं बल्कि भारत के प्रसिद्ध में एक झील है जहां कार्तिक मास की पूर्णिमा को एक विशाल मेला आयोजित होता है जिसने आजकल असंख्य विदेशियों के आगमन से एक अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया है । पुष्कर में जगतपिता ब्रह्माजी का प्रसिद्ध मन्दिर है । सभवत : भारतभर में ब्रह्माजी का ऐसा मन्दिर अन्यत्र हो । झील में दीपदान की अपनी महिमा है । चन्द्रकार झील के तीज घाट को मुख्य घाट माना जाता है और गऊ घाट को हरिद्वार की हरपोड़ी के समान समझा जाता है । पुष्कर को हिन्दुओं के लिये तीर्थगुरु या तीर्थराज माना जाता है । आजकल पुष्कर मेले की भी बहुत चर्चा है और यहां का पशुमेला भारत का विशाल पशु मेला माना जाता है । इस पुष्कर को ज्येष्ठ पुष्कर कहा जाता है और इसके अतिरिक्त कनिष्ठ एवं मध्यम पुष्कर भी इसके समीप स्थित है ।

डिग्गी मेला : जयपुर से 75 किलोमीटर दूर मालपुरा कस्बे से पूर्व डिग्गी कस्बा है जहां भगवान श्री कल्याण जी का प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है । यहां सावन मास की अमावस्या को एक विशाल मेले का आयोजन होता है और इस मेले में हजारों लोग पदयात्रा करके पहुंचते हैं । इस मन्दिर की स्थापना के बारे में अनेक पौराणिक कथाएं प्रचलित हैं ।

श्री महावीर जी : सवाई माधोपुर जिले में गंगापुर के पास श्री महावीर जी का स्थल है जिसे कभी चादन गांव कहते थे । यहां चैत्र शुक्ला त्रयोदशी से वैशाख कृष्णा प्रतिपदा तक एक विशाल (लक्खी) मेला लगता है । मूलत: यहां भगवान महावीर जी की मूर्ति होने के कारण जैन धर्म के अनुयायी आते हैं परन्तु इस संभाग के अन्य जातियों के लोग जिनमें मीणा, गूजर तथा अहीर व सैनी मुख्य हैं वे भी इन्हें अपना अराध्यदेव मानकर आते हैं । मैला प्रसिद्ध रथयात्रा से प्रारम्भ होता है । पूर्वी राजस्थान का यह एक विशाल एवं चर्चित मेला है ।

रणथम्भौर : पूर्वी राजस्थान का एक अन्य प्रसिद्ध मेला रणथम्भौर का है जो सवाई माधोपुर के समीप रणथम्भौर के प्रसिद्ध किले में भरता है । भाद्रपद शुक्ला की चतुर्थी को यहां प्रसिद्ध भगवान गणेश का मेला लगता है । यहां के गणेशजी इस क्षेत्र के प्रसिद्ध लोक देवता है और इस संभाग में शादी से पूर्व पहला विवाह निमन्त्रण इन्हीं गणेशजी को भेजते हैं ।

बेणेश्वर मेला : बेणेश्वर का मेला डूंगरपुर जिले की असपुर तहसील के नवातपुरा नामके स्थान पर भरा जाता है । शिवरात्रि अर्थात माघ पूर्णिमा पर लगने वाला यह मेला वस्तुत: आदिवासियों का मेला है । यहां भगवान शिव के लिंग पर बेणेश्वर का नाम आधारित है । यह स्वयम्भू लिंग है । समीप

ही सोम एवं माही नदी के संगम पर लक्ष्मीनारायण जी का प्रसिद्ध मन्दिर है । माघ शुक्ला एकादशी को यहां मेला लगता है ।

कोलायत : बीकानेर नगर के दक्षिण में जैसलमेर मार्ग पर कपिलवस्तु का पवित्र स्थल है जहां कार्तिक पूर्णिमा को एक विशाल मेला लगता है एवं भारत के कोने -कोने से साधु, मुनि एवं सन्त आते हैं । यह स्थल कोलायत के नाम से जाना जाता है एवं कपिलमुनि के मन्दिर के समीप एक विशाल तालाब है जहां दीप जलाकर पत्तों पर छोड़े जाते हैं । इस अवसर पर पशु मेला भी लगता है ।

भर्तृहरि मेला : अलवर से 13 किलोमीटर दूर स्थित इस स्थान (भर्तृहीर) पर वर्ष में वैसे दो बार मेला लगता है । कहते हैं प्राचीनकाल में इस स्थान का नाम उज्जैन था और ये भर्तृहीर वहीं है । जो गोरखनाथ जी के शिष्य थे । यह स्थान नाथ एवं औघड़ साधुओं के लिए तीर्थ स्थान हैं । मेले में मीणा, गुजर, अहीर, जाट, बागड़ा आदि कृषक जातियाँ बड़ी संख्या में सम्मिलित होती है । विशेष मेला भाद्रपद में लगता है ।

चन्द्रभागा मेला : झालावाड़ के निकट चन्द्रभागा नदी के तट पर कार्तिक मास में तीन दिन का यह मेला लगता है और शिव के भक्त कार्तिक पूर्णिमा के दिन इस तीर्थ पर स्नान करते हैं एवं दीप प्रज्वलित करते हैं । इस अवधि में एक विशाल पशु मेला लगता है जिसमें राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात एवं मध्य प्रदेश से लोग आते हैं ।

शिवाड़ : सवाई माधोपुर जिले में ही जयपुर रेलवे मार्ग पर ईसरदा रेलवे स्टेशन के समीप पौराणिक गाथाओं का बाहरवां ज्योतिर्लिंग शिवालय (शिवाड़) स्थित है । इस ज्योतिर्लिंग की प्रसिद्धि घुश्मेश्वर महादेव के रूप में हुई है । इस शिवालय के उत्तर में स्थित जलाशय के पानी को गंगा के समान पवित्र माना गया है ।

बाणगंगा मेला : यह मेला जयपुर जिले में बैराठ से 11 कि. मी. दूर बाणगंगा नदी के किनारे लगता है । यह मेला वैशाख पूर्णिमा को आयोजित होता है । ऐसी मान्यता है कि पाण्डव राजकुमार अर्जुन ने अपने विराटपुरी निवास के समय इस जलधारा को उत्पन्न किया था । 200 वर्ष पूर्व यहां राधाकृष्ण जी के मन्दिर का निर्माण हो गया था । इस दिन के यहां व्यापारी भी आकर अपनी दुकानें लगाते हैं ।

बृजमेला : भरतपुर में होली उत्सव के कुछ दिन पूर्व भगवान श्री कृष्ण के सम्मान में रासलीला का आयोजन होता है । इसमें काफी संख्या में ग्रामीण क्षेत्र के लोग भाग लेते हैं और सभी पर गुलाल छिड़कते हैं ।

सीताबाड़ी मेला : बारां जिले में केलवाड़ा गांव के समीप सीताबाड़ी मेला लगता है । ऐसी मान्यता है कि श्री राम ने जब सीताजी को त्याग दिया था तब लक्ष्मणजी उन्हें इसी स्थान पर छोड़कर गये थे । लक्ष्मणजी ने एक बाण चलाकर पानी का स्त्रोत भी भूमि से निकाल दिया था जो लक्ष्मण कुण्ड के नाम से जाना जाता है । पानी के अन्य कुण्ड भी इस स्थान पर है जो सूरज कुण्ड, सीता कुण्ड एवं भरत कुण्ड के नाम से जाने जाते हैं । इन कुण्डों में लोग भक्ति से स्नान करते हैं । पास में हो वाल्मिकी आश्रम है जहां लव एवं कुश ने जन्म लिया था । इस अवसर पर विशाल पशु मेला भी लगता है ।

खाटू श्यामजी मेला : खाटूश्याम जी का मन्दिर खाटू में स्थित है जो सीकर से 48 कि.मी. की दूरी पर स्थित है । रींगस से भी इस स्थान को पहुँचा जा सकता है । वैसे तो इस स्थान पर प्रतिदिन मेला लगा रहता है । परन्तु फाल्गुन सुदी दसवीं से द्वादसी तक एक विशाल मेला आयोजित होता

है । बहुत से तीर्थयात्री यहां 'झाडुला ' (बालक के प्रथम बार बाल कटाने की प्रथा) भी कराते हैं । ऐसी मान्यता है कि महाभारत के काल में श्री कृष्ण ने बारबिक का सिर मांग लिया था और उसे एक पहाड़ी पर रख दिया था ताकि वह महायुद्ध देख सके । फिर उसके त्याग से प्रसन्न होकर उसे यह वरदान दिया था कि वह कलियुग में श्याम जी अर्थात उनके नाम से पूजा जाये ।

केसरिया नाथ जी : उदयपुर से गुजरात जाने वाले मार्ग पर ऋषभदेव जी का स्थान आता है जहां उनका भव्य मन्दिर भी बना हुआ है । यहां भगवान की काले संगमरमर की बनी मूर्ति देखने लायक है । चैत्रमास की अष्टमी को यहां एक विशाल मेला लगता है और जैन मतावलम्बियों की यहां यात्रा एक पुण्य कार्य समझी जाती है । अन्य धर्मों एवं मतो के लोग भी केसरिया जी श्रद्धा से आते हैं । भीलों की इनमें गहरी आस्था है ।

सालासर मेला : सीकर से सुजानगढ़ जाने वाले मार्ग पर सालासर गाँव है जहां हनुमान जी का प्रसिद्ध मन्दिर है । वैसे आजकल हमेशा ही यहां भक्तों की भीड़ लगी रहती है लेकिन हनुमान जयन्ती पर एक विशाल मेला आयोजित होता है । इसी प्रकार पश्चिमी राजस्थान में बीकानेर संभाग में श्री डूंगरगढ़ कस्बे के समीप पुनरासर गांव में भी हनुमान जी का मेला लगता है ।

मकर संक्रान्ति का मेला : वैसे तो भारत भर में 14 - 15 जनवरी के दिन मकर संक्रान्ति का त्यौहार मनाया जाता है और लोग पवित्र नदियों में प्रात: स्नान करते हैं । राजस्थान में भी लोग नदियों, तालाबों एवं कुण्डों में जाकर स्नान करते हैं लेकिन जयपुर के गलताजी की छटा ही निराली है । यहां इस दिन विशाल मेला लगता है । आजकल यह दिन पतंग उड़ाने के दिन के रूप में भी बहुत चर्चित है और इस दिन जयपुर का आकाश पतंगों से आच्छादित हो जाता है ।

25.04 देवी पूजा के मेले

वैसे तो इन मेलों का विवरण धार्मिक मेलों के शीर्षक के अन्तर्गत किया जा सकता था लेकिन प्रदेश में देवी पूजा के मेलों की अपनी संख्या एवं विशेषता देखते हुए उन्हें अलग से समझाने के लिये लिया गया है । प्रदेश में शक्ति पूजा की अपनी महिमा है । जहां एक ओर आदिवासी एवं कृषक जातियों में इनकी अपनी अराधना है वहीं दूसरी ओर प्राचीन रजवाड़ों में इनकी पूजा का विशेष महत्व रहा है । प्रदेश में मुख्य मेले निम्न प्रकार से रहे हैं

कैलादेवी मेला : करौली जिले में कैला गाँव से लगभग 2 कि.मी. पर त्रिकूट पहाड़ियों में कालीसिल नदी के तट पर स्थित है । यहां महालक्ष्मी एवं चामुण्डा देवी का मन्दिर है जिनके बारे में कहा जाता है कि यह यादवों एवं खीचियों की कुलदेवी है । साथ ही हनुमान जी का एवं भैरव का मन्दिर है । यहां चैत्रमास की अष्टमी को विशाल मेला लगता है और लगभग दो लाख से भी अधिक भक्त दर्शन को आते हैं । पूर्वी राजस्थान के निवासियों का यहां इस दिन सबसे बड़ा मेला लगता है । स्वाभाविक है कि इस अवसर पर व्यापारिक गतिविधियाँ भी पूरी तरह सक्रिय होंगी ।

शीतला माता : सम्पूर्ण उत्तर भारत में शीतला माता की पूजा होती है और इसका विशेष पूजन चैत्र बदी सप्तमी को होता है । चूंकि इस दिन लोग ठण्डा खाना खाते हैं इस कारण राजस्थान में इस दिन को बास्योड़ा भी कहते हैं । वैसे तो इस मातृरक्षिका देवी की पूजा प्रदेश में अनेक स्थलों पर की जाती है लेकिन जयपुर - टोंक मार्ग पर चाकसू के समीप इस इकाई देवी का लोकप्रिय मन्दिर है । इस अवसर पर करीब एक लाख लोग एकत्रित हो जाते हैं । परम्परा के अनुसार चाकसू मन्दिर के पुजारी

कुम्हार है । मारवाड़ में अष्टमी मनायी जाती है । कई अन्य भागों में अष्टमी मनाने के ही विवरण आये हैं ।

चौथ माता का मेला : सवाई माधोपुर के समीप बरवाड़ा स्थान पर चौथमाता का मेला भरता हैं । पूर्वी राजस्थान में चौथ माता की बड़ी मान्यता हैं । नवरात्रि में यहां भीड़ रहती ही है इसके अतिरिक्त माघ शुक्ला चर्द्थी (तिल चौथ) एवं कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को भी विशाल आयोजन होते हैं ।

इन्द्रगढ़ की क्षेमकरी देवी : सवाईमाधोपुर के समीप ही हाड़ौती संभाग की सीमा पर इन्द्रगढ़ कस्बे की बाहरी सीमा पर ऊंची पहाड़ी पर क्षेमकरी माता जी का अति प्राचीन मन्दिर है । माताजी की प्रतिमा पहाड़ी में ही स्वाभाविक ढंग से बनी हुई है और बड़ी दिव्य है । यह देवी प्रदेश में बीजासन देवी के नाम से प्रसिद्ध है । दुर्गा सप्तशती के अनुसार देवी ने कुमारिका क्षेत्र के पर्वत पर निवास करते हुए राक्षसों का संहार किया था । नवरात्रि में यहां विशाल मेला लगता है और जयपुर शहर से लोग पैदल यात्रा करके यहां पहुँचते हैं ।

सिथूर की माताजी : बूंदी-देवली मार्ग पर सुरथपुरी नामक प्राचीन तीर्थ है जिसे आजकल सिथूर कहते हैं । यहां रक्त दन्तिका देवी का पूज्य मन्दिर है जिनकी महिमा दुर्गा सप्तशती में गायी गयी है । नवरात्रि में यहाँ मेला आयोजित होता है ।

फलौदी माता जी का मेला : कोटा - बम्बई रेल मार्ग पर रामगंजमंडी के एक मील पश्चिम में खैराबाद की घनी बस्ती के मध्य देवी का एक सुदृढ़, विशाल एवं भव्य मन्दिर है । देवी की यह मूर्ति मेड़ता से लाकर यहां स्थापित की गयी थी, ऐसी मान्यता है नैणसी ने अपनी ख्यात में भी मेड़ता में प्राचीन फलौदी देवी के मन्दिर का उल्लेख किया है । मन्दिर के अहाते में एक विशाल कुण्ड है और बसन्त पंचमी को यहां एक विशाल मेला लगता है । प्रति बारह वर्ष में कुम्भ की भांति यहां लगभग एक महिने तक विशाल मेला लगता है और मेड़तवाल वैश्य परिवार दूर -दूर से आते हैं ।

जीणमाता मेला : सीकर जिले में रेवासा ग्राम से दक्षिण की ओर पर्वत श्रृंखला की उपत्यका में जीणमाता का अति प्राचीन अवस्थित है । यह मन्दिर केवल पूर्व दिशा में खुला हुआ है बाकी दिशाओं में यह पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है । यहां माता की अष्टभुजा प्रतिमा है एवं दो दीप अखण्ड रूप से प्रज्वलित होते आये हैं । कहावतों के अनुसार यहां हर्ष एवं जीण नाम के दो भाई - बहिन ने पारिवारिक कष्टों से तंग आकर यहां तपस्या की थी तथा देवी ने प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दिया था । जीणमाता के मन्दिर के शिलालेख पर निर्माण सं. 1121 में होने का उल्लेख है तथा यह कार्य मोहिल (चौहान) हठढ़ द्वारा कराया गया था । यहाँ की दीवारों एवं छतों पर बौद्ध तांत्रिकों एवं वाम मार्गियों की साधना की पाषाण प्रतिमाएं बनी हुई हैं । चैत्र एवं आश्विन माह की नवरात्रियों में यहां सुदूर प्रान्तों से लोग आते हैं । यहां विवाह की जात देने तथा बच्चों के मुंडन कराने की प्रथा भी है ।

विभिन्न देवियों के मेले उपर्युक्त वर्णन के अतिरिक्त हमें विभिन्न स्थलों पर देवियों के मेलों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । जैसे अलवर की खैरतल माता, मनसादेवी, आमेर की शिलादेवी (छठ का मेला); जयपुर में छीक माता; जोधपुर में चावंड माता; शीतला देवी, पीपलाज माता, खोखरी माता, चामुण्ड माता; उदयपुर की जावरमाता, अम्याामाता, आवरी माता; ओसीया की सचियाय माता; जोबनेर की जोबनेर माता; झुन्झुनू की रानी सती; तलवाड़ा (बांसवाड़ा) की तरताई माता (त्रिपुरा सुन्दरी); नवलगढ़ की सकराय माता; नारलाई (जोधपुर) की हिंगलाज माता; नागना की नागनेचीजी माता; फलोदी पोकरण

की लटियाल माता; बसन्तगढ़ (सिरोही) की सीमल माता; बासवाड़ा की चींच माता, मोरखाणा (बीकानेर) की मोरखण माता; रामगढ- जयपुर की जमुवाय माता; भरतपुर की राजेश्वरी माता; रोल गांव की दधिमति माता; सांभर की शाकम्भरी माता; मेड़ता की भवाला (महाकाली) माता; सादड़ी की भ्रमर माता, आदि आदि ।

राजस्थान में लोक देवियों की भी महिमा है । इनमें कुछ चर्चित मेलों का विवरण इस प्रकार है : -

देशणोक की करणीमाता : बीकानेर से लगभग 30 कि.मी. दक्षिण में नोखा मार्ग पर देशनोक में करणीमाता का भव्य मन्दिर है । भारत में यह चूहे का मन्दिर भी कहा जाता है । मन्दिर में चूहे असंख्य है और उन्हें 'काबा ' कहा जाता है । यहां वर्ष में दोनों नवरात्रियों के समय विशाल मेला लगता है । पूज्यनीय करणीजी 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 16 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुई थी । आप जाति से चारण थी और आपके आशीर्वाद से जोधपुर एवं बीकानेर राज्यों का निर्माण हुआ था । मन्दिर में सफेद काबे का दर्शन बहुत शुभ माना जाता है ।

चारणी देवियों में आदि देवी हिंगलाज माता मानी जाती है । तत्पश्चात सिन्ध से 98 वीं - शताब्दी में आवड़ माता का आगमन हुआ । आवड़ माता कीं बहिने भी देवियाँ मानी जाती है । एक अन्य चारणी देवी बरबड़ी जी ने मेवाड़ के महाराणा सांगा को प्रतापी होने का आशीर्वाद दिया था ।

आईजी : बीलाड़े (जोधपुर) के सीखीं समाज की अराध्य देवी आईजी मुलतान व सिन्ध से बीलाड़ा आयी थी और एवं संस्कृति सं. 1561 में आप स्वर्ग सिधारी थी । यह भी धारणा है कि आईजी शम्स पीर की शिष्या थी । आईजी का थान बड़ेर कहलाता है और वहां कोई मूर्ति नहीं होती है । प्रत्येक महिने की दूज (सुदी) को आईजी की पूजा होती है । आईजी रूपरेखा के मन्दिर को दरगाह कहते हैं ।

25.05 लोक देवताओं के मेले

महाराष्ट्र की भांति राजस्थान में भी मध्ययुगीन भक्तिकाल के सन्तों का आम नागरिक पर बड़ा प्रभाव रहा है । आम जन ने उनकी शिक्षाओं के प्रति आस्था व्यक्त की तथा उनके चमत्कारों के प्रति मस्तक को नवाया । उन्हें देवताओं की श्रेणी में रखा । उनके जन्म एवं निर्वाण दिवस पर विशेष अराधना की तथा समूह में एकत्रित होकर दिवस को मनाया । फलस्वरूप स्थानीय मेलों की नींव पड़ी । उनमें कुछ मुख्य निम्न प्रकार से हैं : -

गोगाजी का मेला : राजस्थान के पंच पीरों में गोगाजी का नाम आता है । उनके बारे में मान्यता है कि आपने महमूद गजनवी के आक्रमण के विरुद्ध मनुष्य एवं पशुधन को बचाने के लिये अपने प्राण त्याग दिये थे । आपका स्थान गोगामेड़ी है जो उत्तरी राजस्थान में नोहर - भादरा के समीप है । सदुलपुर से हनुमानगढ़ जाने वाली रेलवे लाईन पर गोगामेड़ी स्टेशन है । गोगाजी की यहां समाधि है । गोगाजी के थान व देवली प्रदेश के गांव - गांव में देखने को मिलती है । आपकी गुजरात, उत्तरप्रदेश, हरियाणा एवं पंजाब में भी बड़ी मान्यता है । उत्तरी प्रान्तों में आपको जाहरपीर के नाम से जाना जाता है । लोगों को विश्वास है कि साप के काटने का ईलाज गोगाजी की आस्था में है । भाद्रपद में गोगामेड़ी में विशाल मेला लगता है । आपका मन्दिर संगमरमर से निर्मित है एवं मन्दिर में दो मीनारे भी सुसज्जित हैं ।

रामदेवजी का मेला राजस्थान, मालवा, हरियाणा एवं गुजरात तथा विशेष तौर पर पश्चिमी राजस्थान में इस लोक देवता की सभी सम्प्रदायों एवं वर्गों विशेषकर निम्न वर्गों में बड़ी मान्यता है । राजस्थान के पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में बीकानेर जैसलमेर मार्ग पर पोकरण एवं फलौधी के मध्य रामदेवरा स्थल है जहां इस लोकदेवता ने 15 वीं शताब्दी में समाधि ली थी । इस स्थान को रुणेचा भी कहते हैं । भक्तिकालीन इस सन्त ने अपने जीवनकाल में ऐसे चमत्कार दिखाये कि क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी इनके अनुयायी हो गये । बाबा ने रुणेचा में एक तालाब भी खुदाया जिसे रामसर कहते हैं एवं भक्त इसमें स्नान करते हैं । निम्नवर्ण की जातियों को उठाने में आपका बहुत योगदान है । आपको रामशाह पीर भी कहा जाता है । बाबा का प्रतिवर्ष भाद्रपद मास में द्वितीया से ग्यारस (11) तक मेला लगता है । दसमी (10) के दिन आपकी विशेष पूजा होती है । प्रान्त भर से पैदल यात्री लम्बी दूरियां तय करते हुए इस अवसर पर रुणेचा पहुँचते हैं ।

तेजाजी का मेला : राजस्थान में पूर्व मध्यकाल में हुए गोरक्षक, परोपकारी एवं सत्य निष्ठ जूझारों की श्रेणी में लोकदेवता तेजाजी का नाम अविस्मरणीय है । तेजाजी का जन्म नागौर जिले में हुआ वे धोलिया गांव के जाट थे । पनेर में उनकी ससुराल थी और जब वे अपनी वधु को लेन गये तो वहां के गुजरों की गायें लुट जाने के समाचार से वे व्यतीत हो गये तथा उन गायों को बचाने में वे घायल हो गये । उसी अवस्था में सर्प के काटने से उनका देहान्त हो गया । बाद में उनकी इस त्याग के फलस्वरूप उसी स्थल पर पूजा होने लगी । तत्पश्चात उनकी पूजा का केन्द्र परबतसर कस्बा हो गया जहां आज भी भाद्रपद की दसमी को एक विशाल मेला लगता है । परबतसर में तालाब के किनारे मन्दिर में तेजाजी की संगमरमर की मूर्ति है । हाड़ौती संभाग में भी तेजाजी के मेले लगते हैं । राजस्थान के किसान हल बुवाई के समय तेजाजी का स्मरण करते हैं तथा सांप-बिच्छू के काटने का इलाज तेजाजी के स्थल पर उनकी भक्ति के द्वारा किया जाता है । मेले के अवसर पर विशाल पशु मेला भी लगता है ।

देवजी : सम्पूर्ण राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं गुजरात के गूजर जाति के प्रमुख देवता के रूप देवनारायण की प्रबल मान्यता है । ऐसी धारणा है कि आप भोज बगड़ावत की स्त्री सेढू के पुत्र थे । आपने जीवनकाल में अपने परिवार व वंश के शत्रुओं से बदला लिया व बाद में सन्त हो गये । यह भी कहा जाता है कि इतिहास प्रसिद्ध मेवाड़ के राणासांगा आपके भक्त थे और उनकी सफलताओं में आपका आशीर्वाद था । राणा ने चित्तौड़ में देवनारायण जी का मन्दिर भी बनाया था । वैसे देवजी के अतिरिक्त बगड़ावत गाथा में आये सभी महापुरुषों एवं चरित्रों के स्मारक मेवाड़ में आसीन्द में स्थित है । दीपावली के अवसर पर मालवा, बुन्देलखण्ड, निमाड़ एवं राजस्थान के गूजर समुदाय के लोग 'हीड़ प्रबंधन' गाते हैं । इसमें पशुधन की महत्ता का बखान किया गया है । आपका माही सप्तमी एवं उजली भादवा छठ को विशेष मेला लगता है ।

पाबू जी : 14 वीं शताब्दी के राठौड़ राजपूत वंशीय पाबूजी धर्मरक्षक, प्रतिज्ञापालक यौद्धा थे । इनका स्थान फलौधी में कोलूमण्ड है लेकिन राजस्थान में स्थल -स्थल पर आपके स्थान हैं एवं पूजा है । आपने भी गोओं को बचाने में अपने प्राण त्याग दिये थे । पाबूजी राजस्थानी गीतों में अमर है । पाबूजी के स्थान पर भी लोग सर्प काटने पर इलाज के लिये जाते हैं । आपका दशहरे के समय मेला लगता है ।

जांभाजी : आप 16 वीं शताबदी के प्रसिद्ध सन्त है और हरसौर गांव के पंवार राजपूत थे । आपने अपने शिष्यों को 29 शिक्षाएं दी और ऐसी मान्यता है इसी आधार पर 'विश्नोई मत' एवं समुदाय का जन्म हुआ । आपकी शिक्षाएं राजस्थान की भोगोलिक, वातावरणीय व आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिये हैं एवं साथ ही व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिये भी उन्मुख करती हैं । आपका बीकानेर संभाग में नोखा के समीप मुकाम स्थल पर प्रतिवर्ष दो बार फाल्गुन वदि अमावश्या एवं अश्विन वदी अमावश्या के दिन मेला लगता है । जिसमें राजस्थान के अतिरिक्त भारत के अन्य स्थलों से भी इनके अनुयायी सम्मिलित होने के लिये आते हैं । मुकाम में जांभाजी की समाधि है । पास में कबूतर, मोर एवं पक्षियों को चुग्गा दिया जाता है ।

मल्लीनाथ जी का मेला : इसे तिलवाड़ा मेला भी कहा जाता है । यहां राजस्थान का सबसे विशाल पशु मेला लगता है । राजस्थान के पश्चिमी भाग में बाड़मेर जिले में तिलवाड़ा स्थित है । यहां चैत्र मास की एकादशी (बदी) से पूरे पन्द्रह दिनों तक मेला लगता है । यह स्थानीय नायक रावल मल्लीनाथ की स्मृति में सम्पन्न होता है । पन्द्रहवीं शताब्दी के इस राठौड़ कुल के नायक ने यवनों की सैनाओं को परास्त करके बहुत यश कमाया था । मल्लीनाथ जी महेवा के शासक थे । रावत इनकी उपाधि थी और ये शाक्तमत के कुण्डापथ (जहां मत के अनुयायी एक कुण्डे में ही खाते -पीते हैं) के अनुयायी हो गये । ऐसी मान्यता है कि रावतजी अपनी पत्नी स्पादे जो कि स्वयम् एक सिद्ध थी, के प्रभाव में इस पथ के अनुयायी तत्पश्चात एक माने हुए सिद्ध हो गये । इनके विलक्षण चमत्कारों के कारण ही ये लोक मानस में एक देवता के रूप में स्थापित हो गये ।

माकड़जी : ये देवनारायण जी के सहयोगी वीर पुरुष थे । इनका मगरा मेवाड़ के पंवार कुल में जन्म हुआ था । अजमेर की पहाड़ियों में आसाढ सुदि 9 को आपका मेला लगता है ।

भैरूंजी के मेले वैसे तो राजस्थान में गांव गांव में भैरूं जी के थान या स्थान हैं लेकिन कुछ मेले बहुत चर्चित हैं जैसे पश्चिमी राजस्थान बाप के भैरूंजी, बीकानेर के पास कोडमदेसर के भैरूं जी, रामनोर, ड्रसवाल, भाणूजा के काले एवं गौर भैरव, चित्तौड़ के पास भदेसर के एकला भेरू, तोलीयासर एवं नौसरिया (चूरू) के भैरू आदि आदि । इनके समय समय पर स्थानीय मेले लगते रहते हैं ।

25.06 सूफी सन्तों एवं पीरों के मेले

राजस्थान में सूफी सम्प्रदाय की प्राचीन परम्परा रही है तथा स्थानीय लोगों ने मुस्लिम सन्तों एवं पीरों की पूजा की है उनमें कुछ प्रमुख निम्न प्रकार से हैं

अजमेर का उर्स : -राजस्थान ही क्या सम्पूर्ण देश बल्कि विदेशों में भी अजमेर उर्स का विशेष स्थान है । यहां ख्वाजा चिश्ती साहिब की पवित्र दरगाह है । ऐसी मान्यता है कि आप चौहान शासनकाल में फारस के संजर नामके स्थान से अजमेर आ गये थे और अन्नासागर के पास आकर आपने अपना स्थान नियत किया । आप पूरे जीवन गरीबों की सहायता करते रहे और सूफी मत की शिक्षाएँ देते रहे, इसी कारण आपको गरीब नवाज भी कहा जाता है । दरगाह पर सभी मतों एवं धर्मों के लोग आते हैं एवं फूलों तथा चदरों से भेंट चढाते हैं । दरगाह के भीतर खादिम भक्तों की दर्शन में सहायता करते हैं । हिजरी संवत के छठे महिने रज्जब के पहले छह दिनों में उर्स का मेला लगता है । छठे दिन जन्नती दरवाजा खोला जाता है जिसके बारे में यह विश्वास है कि उसमें से सात बार निकलने से मनुष्य को जन्नत अर्थात स्वर्ग में स्थान प्राप्त होता है । बड़े कुल की रस्म के अवसर पर मजार शरीफ एवं दरगाह

परिसर को केवड़े एवं गुलाब जल के पानी से धोया जाता है । उर्स के अवसर पर रात भर ख्वाजा के सम्मान में कव्वालियां चलती रहती है । दरगाह के प्रागण में अकबर व शाहजहाँ कालीन मस्जिदें हैं । अकबर तो आगरा से अजमेर पैदल आया करता था । यात्रियों को यहां जायीरन कहा जाता है । (चिश्ती साहिब के बारे में विस्तृत विवरण पाठयक्रम प्रथम की इकाई 13 में दिया गया हैं ।)

चिश्ती मत के अन्य उर्स : ख्वाजा साहिब के परिवार में ही हुए अन्य सन्त ने अजमेर केकड़ी मार्ग पर स्थित सरवाड़ परम्पराओं को अपना केन्द्र बनाया । वहां फखरूद्दीन चिश्ती की दरगाह है । सरवाड़ के अतिरिक्त ख्वाजा साहिब के प्रमुख शिष्य हमीदुद्दीन चिश्ती की दरगाह नागौर में है जिसे मुहम्मद बिन तुगलक ने बनवाया था । सरवाड़ एवं नागौर दोनों में की एक उर्स के मेले लगते हैं ।

गलियाकोट का उर्स : डूंगरपुर जिले में सागवाड़ा तहसील में गलियाकोट एक छोटा स्थान है और यह माही नदी के तट पर स्थित है । इस्लाम के दाऊदी बोहरा सम्प्रदाय के अनुयायियों का यह तीर्थ स्थान है । उनके सन्त सैय्यद फखरुद्दीन की दरगाह यहाँ स्थित हैं और पश्चिमी भारत के असंख्य बोहरा सालाना उर्स जो कि हिजरी संवत के मोहर्रम के महिने के 27 वें दिन लगता है, दर्शन करने को आते हैं । उर्स के समय मजलिस लगती है तथा अनुयायी भजनों एवं कीर्तनों में भाग लेते हैं । तीर्थयात्री इस दरगाह में मन्नत मांगकर अपने जीवन को सार्थक करते हैं ।

नरहड़ के पीर : शेखावाटी प्रदेश में नरहड़ के पीर की भारी मान्यता है । आप फतेहपुर सीकरी के प्रसिद्ध सन्त शेख सलीम चिश्ती के शिष्य थे और हजरत शक्करबार या शकरगंज के नाम से प्रसिद्ध हुए । यहां पुत्र प्राप्ति के लिये, बच्चों के झड़ूले तथा पागलपन जैसे असाध्य रोगों को दूर करने के लिये यात्री आते हैं । भादवा के महिने में यहां मेला भरता हैं ।

25.07 सामाजिक समागम

राजस्थान में चौपाल लगाने की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है । सायंकाल के समय गांव के अधिकांशत: वृद्ध व्यक्ति चौपाल में आकर एकत्रित होते थे । गांव की समस्याओं के साथ साथ वे लोग मनोरंजन भी करते थे । मनोरंजन का साधन संगीत होता है । अधिकांश लोकगीत स्थानीय भाषाओं में गाये जाते थे । ग्रामीण जीवन में चौपालों का महत्व अधिक है ।

दशहरे के अवसर पर रामलीला आयोजित करने की परम्परा भारत के अन्य भागों के समान राजस्थान में भी अनादि काल से चली आ रही है । विभिन्न प्रकार के चेहरे बनाकर और वेशभूषा धारण करके रामचरित मानस का नौ दिन तक प्रदर्शन किया जाता है । इसमें गांव, कस्बे अथवा नगर के सभी लोग एकत्रित होते हैं और मनोरंजन करते हैं । गांव में नटों का नाच भी एक ऐसा मनोरंजन साधन है कि जो मेले त्यौहारों के अतिरिक्त सामान्य दिनों में भी आयोजित किया जाता है । इसी प्रकार भाटों के द्वारा जो समारोह आयोजित किये जाते हैं उनमें भी लोग उनके संगीत को सुनकर मनोरंजन करते है और आनन्द लेते हैं । जन्माष्टमी के अवसर पर कतिपय गांवों में झांकी बनाने के साथ -साथ रासलीला का भी आयोजन किया जाता है ।

लेकिन सर्वाधिक लोकप्रिय हाट बाजार है जो प्रत्येक गांव में सप्ताह के एक निश्चित दिन आयोजित किये जाते हैं । इनमें गांववासी एकत्रित होते हैं, आवश्यकता की वस्तुओं की खरीददारी करते हैं, एक दूसरे से मिलते जुलते हैं ।

प्राचीन और मध्य काल में राजाओं की सवारी के समय जन समुदाय एकत्रित होता था । वर्तमान काल में राजनेता अपने भाषणों के लिए जन समुदाय को एकत्रित करते हैं । इस समय जो जन समुदाय

एकत्रित होता है उसको केवल सिर्फ इतना समय मिलता है कि एक दूसरे के साथ मिलने और आवश्यक वार्तालाप करे । इसी प्रकार शादी ब्याह और मानव के अंतिम संस्कार के समय भी जन समुदाय एकत्रित होता है । लेकिन यह केवल क्षणिक है । शादी व्याह के अवसर पर लोगों को मेल मुलाकात का थोड़ा अधिक समय मिल जाता है । लेकिन क्रियाकर्म के समय वातावरण इतना अधिक शोकग्रस्त होता है कि लोग औपचारिकता निभाने के खातिर अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर शमशान से लौट जाते हैं । उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन समुदाय को एकत्रित करना अथवा स्वत: संगठित होने के कई अवसर होते हैं । उस समय यहां के निवासी वातावरण और परिस्थिति के अनुसार अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं ।

25.08 इकाई सारांश

इस प्रकार आपने राजस्थान की समृद्ध एवं समन्यवादी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में मेलों का महत्व पढ़ा । मेलों के लगने के अनेक कारण है । नि:सन्देह हमारी प्राचीन मान्यताएं एवं पौराणिक आस्थाओं ने अनेक मेलों के केन्द्र का स्थान चयनित इकाई किया है साथ ही यहां की आदिम एवं कबीला जनजाति संस्कृति ने भी अपने मेलों का विषय चुना है । जनजाति बेणेश्वर का मेला इसी श्रेणी में आता है । कबीला वादी परम्पराओं ने देवी पूजा को भी सदैव महत्व दिया हे । जिसे राजस्थान की राज परम्पराओं ने शाकृ मत की आस्था के रूप में और वैभवशाली बनाया है । शक्ति के लगभग सभी स्वरूपों के दर्शन एवं मेले होते हैं । प्रदेश में प्राचीन धार्मिक मान्यताओं के अतिरिक्त ऐसी नारी शक्तियाँ हुई हैं जिन्होंने अपनी शिक्षाओं एवं चमत्कारों से पूजा स्थलों का एवं लगने वाले मेलों का कारण बनाया है । करणी माता का मेला इसी श्रेणी में है । मध्यकाल में हुए भक्ति आन्दोलन के अनेक सिद्ध पुरुषों ने अपने चरित्र, त्याग, कार्य निष्ठा, सत्य निष्ठा से लोक जीवन को अविस्मरणीय उदाहरण प्रस्तुत किये हैं तथा लोगों ने भी उनके कार्यों में आस्था रखते हुए उन्हें अपने मानस में देवता का स्थान दिया है व उनकी स्मृति में मेले रचे गये हैं । प्रदेश में उर्स पर्वों का भी सूफी सन्तों एवं पीरों के कारण अपना विशिष्ट स्थान है उर्स में भाग लेने भारत भर से लोग आते हैं ।

25.09 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये-

(1) पुष्कर मेले के महत्व पर प्रकाश डालिये ।

(2) गलियाकोट के उर्स का क्या महत्व है ।

(3) लोकदेवियों में करणीमाता के उत्सव का क्या स्थान है ।

(4) सामाजिक समागम के मुख्य अवसर कितने प्रकार के हैं ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये. -

(1) सवाई माधोपुर जिले के प्रमुख मेलों का विवरण दीजिये ।

(2) जोधपुर बीकानेर संभाग के प्रसिद्ध लोक देवताओं के मेलों पर प्रकाश डालिये ।

(3) ख्वाजा साहिब के उर्स का भारत में किस प्रकार का स्थान है ।

(4) जनजातियों के मेलों का विवरण दीजिये ।

इकाई सं. 26 'पर्व एवं त्योहार''

इकाई संरचना

6.01 उद्देश्य

26.02 प्रस्तावना

26.03 गणगौर

26.04 रक्षा बन्धन

26.05 तीज

26.06 गणेश चतुर्थी

26.07 दशहरा

26.08 सांझी

26.09 शरद पूर्णिमा

26.10 दीपावली

26.11 मकर संक्रांति

26.12 बसन्त पंचमी

26.13 होली

26.14 मुस्लिम समाज के त्यौहार

26.15 जैन त्यौहार

26.16 इकाई सारांश

26.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

26.01 उद्देश्य

भारत के अन्य भागों के समान राजस्थान में भी पर्व एवं त्यौहार मनाने की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह जटिल परिस्थितियों के पश्चात् मनोरंजन और मानसिक क्लेश को दूर करने के लिए त्यौहार का आनन्द उठाता है। कुछ त्यौहार धार्मिक कारणों से मनाये जाते हैं। जबकि अन्य त्यौहार महापुरुषों की स्मृति में मनाये जाते हैं। त्यौहार के सम्बन्ध में प्रारम्भिक ज्ञान कराना युवा छात्रों के लिए आवश्यक है। इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्तुत पाठ लिपिबद्ध किया गया है।

26.02 प्रस्तावना

राजस्थान में प्रत्येक वर्ण का वृद्ध, नवयुवा, बालक, स्त्री और पुरुष त्यौहार मनाते हैं। त्यौहार के मनाने से सामाजिक समागम होता है। सामान्य व्यक्तियों को प्रेरणा मिलती है कि वह अपने सांस्कृतिक जीवन को बनाये रखे। राजस्थान में प्राचीन काल से ही निरन्तर युद्ध और संघर्ष का वातावरण रहा है। अनावृष्टि और अतिवृष्टि के कारण अकाल भी पड़े हैं। लेकिन फिर भी यहां के निवासी अपने जीवन को रसमय बनाये रखने के उद्देश्य से त्यौहार मनाते हैं। माह में एक त्यौहार आ जाना परम्परा है। हिन्दुओं के त्यौहार जैनियों अथवा मुस्लिम त्यौहारों की तुलना में संख्या में अधिक है, कुछ त्यौहारों

की उत्पत्ति पौराणिक है । उनका इतिहास बहुत पुराना है, और जैसा कि उद्देश्य में लिखा जा चुका है, त्यौहार मनाने के धार्मिक और धर्मनिर्पेक्ष कारण है । इसीलिए इस प्रदेश में त्यौहार मनाये जाते हैं ।

26.03 गणगौर

राजस्थानी समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय त्यौहार गणगौर है । यह ऐसा त्यौहार है जो उच्च और निम्न वर्ग के सभी लोग मनाते हैं । चाहे वह विवाहित हो, अथवा अविवाहित, कन्याऐं इसे अपना कर्तव्य और विशिष्ठ अधिकार समझती हैं । गणगौर के 15 दिन पहले से ही शिव और गौरी की पूजा करने लगती है । इन दोनों अर्थात शिव एवं पार्वती को सुहाग का प्रतीक माना जाता है । गणगौर को सीता और सावित्री का आदर्श समझकर इस त्यौहार को मनाया जाता है । पार्वती का शिव के प्रति प्रेम अनुकरणीय था । उनका सांसारिक जीवन आहल्यादित था । गणगौर का त्यौहार चैत्रमास (मार्च के उत्तरार्द्ध) में मनाया जाता है, जबकि पृथ्वी पर नया वातावरण छा जाता है, उस समय वायु सुहावनी होती है, पेड़ों में कोपलें फूटने लगती हैं, तितलियाँ तथा अन्य पक्षी कलरव करने लगते हैं । मनुष्य और पशु भी आनन्दित रहते हैं । चैत्र मास के प्रथम दिन गणगौर का त्यौहार प्रारम्भ हो जाता है जो 18 दिन तक चलता रहता है । कुंवारी कन्याएँ व्रत रखती हैं । दिन में केवल एक समय भोजन करती हैं, यह कर्म इस आशा के साथ किया जाता है कि उन्हें सुयोग्य पति मिलेगा । विवाहित स्त्री भी दिन में एक समय भोजन करती है क्योंकि व्रत रखते समय उनकी कामना रहती है कि पति सुखी और समृद्धशाली हो, लेकिन हिन्दू समाज में विधवाओं को गणगौर के दिन व्रत रखने के लिये मना ही है । नव विवाहित स्त्री के लिए 15 दिन तक व्रत रखना और पूजा करना अनिवार्य है । उसके बाद वह 6 अथवा 8 या 10 अविवाहित कन्याओं को बबूल की दातुन भेजकर नियन्त्रित करती है । व्रत समाप्त हो जाने के पश्चात अपने मित्रों और सम्बन्धियों को भोजन कराती है । विवाहित स्त्रियां भी व्रत रखती है और गौरी का पूजन करती हैं । मारवाड़ में धींगा गणगौर वैशाख बदी तृतीया को मनायी जाती है जिसमें स्त्रियाँ रात भर नाचती, गाती एवं स्वाग रचती हैं ।

जयपुर राज्य के दस्तूर कौमवार रिकार्ड के अनुसार ईसर और ईसरी को 15 दिन के पश्चात् अर्थात् श्रावण शुक्ला तीज के दिन उसकी काष्ट की प्रतिमाओं के सहित जलाशय तक ले जाया जाता है । नदी अथवा झील के तट पर स्त्रियाँ एक दूसरे के साथ हाथ बांधकर नाचती है और गाती है । जोधपुर राज्य की हकीकत वही से जाहिर होता है कि गणगौर का जुलूस निकाला जाता है, जिसकी अगुवानी पुरोहित करते थे । गाजे बाजे के साथ बाजार से गुजरते हुए जुलूस किसी झालरा अथवा झील के किनारे पहुँच जाता है । जोधपुर महाराजा भी अपने अनुयाईयों के साथ जुलूस में शामिल होते हैं । इसी प्रकार कोटा के पुरालेखीय दस्तावेजों से यह जानकारी मिलती है कि विभिन्न जातियों की स्त्रियाँ कुन्जारिया , लखारा , नवदीया और भाव - भुज राजमहल के द्वार पर नाचते गाते पहुँचते थे । उनके साथ पहलवान भी होते थे जो अपनी कला का प्रदर्शन करते थे । गणगौर घाट पर पटाखों के साथ गणगौर की सवारी का विसर्जन करना कठिन हो जाता था ।

कर्नल टॉड ने उदयपुर में गणगौर की सवारी और इस त्यौहार को मनाते हुये देखा था । उसने इसका सजीव चित्रमय वर्णन अपने 'ऐलल्स ' के जिल्द-एक में लिपिबद्ध किया है । वे लिखते हैं कि

एकलिंगजी की ओर से घोषणा की जाती थी कि गौरी ने झील की यात्रा प्रारम्भ कर दी है । मेवाड़ के महाराणा इस दृश्य को झरोखे में बैठकर अपने संगी साथियों के साथ देखते थे । इसी प्रकार राजस्थान में गणगौर त्यौहार मनाने की प्रथा बड़ी प्राचीन है । इस अवसर पर महिलाएं मेहन्दी हाथों पर रचाती हैं तथा कुंआरी लड़कियाँ अपने सिर पर मिट्टी के बर्तन जिनमें कई छेद होते हैं तथा अन्दर दीपक का प्रकाश विद्यमान रहता है, जिसे 'घुडला ' कहते हैं, रखकर रात्रि के पहले पहर में गीत गाती हैं । गणगौर के अन्तिम तीन दिनों में उत्सव पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है । ईसर एवं गौरी की मूर्तियों को सजाकर तालाब, कुँए या नदी के तट पर ले जाया जाता था तथा वहां उन पर पानी का छिड़काव करके वापिस लौटा लिया जाता है । अन्तिम दिन मूर्तियां पानी में विसर्जित कर दी जाती है । इन दिनों में मूर्तियों को एक जलसे में ले जाया जाता है जिसे देखने के लिये हजारों लोग उमड़ते हैं ।

26.04 रक्षा बन्धन

श्रावण माह की पूर्णिमा के दिन, जो आमतौर पर जुलाई - अगस्त माह में आता है, रक्षा बन्धन का त्यौहार मनाया जाता है । मूल रूप से यह त्यौहार भाई -बहिनों के बीच सुन्दर धागा बांधने का है । रेशमी, जड़ाऊ राखियाँ शासकों को भेंट की जाती थी । भाई की दायीं कलाही पर बहिने राखी बाधती हैं । जो भाई राखी बधंवाता है उससे यह आशा की जाती है कि वह अपनी बहिन की रक्षा करेगा इसके बाद उसे उचित उपहार देता है । मेवाड़ के विक्रमादित्य की माता कर्णवती ने मुगल सम्राट हुमायूँ के पास 1534 में राखी भेजी थी और यह संदेश भेजा था कि गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के विरुद्ध वे उसकी सहायता करे । डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि 1534 की घटना के बाद इसका प्रभाव मुगल समाज पर भी पड़ा था । अकबर और जहांगीर अपने हिन्दू दरबारियों से कलाई पर राखी बंधवाते थे । इस प्रकार रक्षा बन्धन का पर्व राजस्थान की संस्कृति के साथ गत चार शताब्दियों से जुड़ा हुआ है ।इस त्यौहार की राजस्थान में बहुत मान्यता है तथा संस्कृति से निकट का सम्बन्ध है ।

26.05 तीज

जिस प्रकार गणगौर एक रंगीला त्यौहार है, उसी प्रकार तीज का पर्व भी राजस्थान के नागरिकों की भावनाओं के साथ सम्बद्ध हैं । तीज मानसून के आगमन का द्योतक है । यह त्यौहार भी देवी पार्वती को भेंट है । मानसून के मौसम में वैवाहिक जीवन की दीर्घ कामना मंगलमय भावना के साथ की जाती है । तीज में भी देवी की मूर्ति की यात्रा निकाली जाती हैं । गणगौर व तीज की यात्रा में एक अन्तर यह है कि गणगौर में मूर्ति पर छत्र नहीं होता है तथा तीज विवाहित स्त्री-पुरुषों का त्यौहार है । इसे झूलों का त्यौहार भी कहा जाता है । विशेषकर स्त्रियाँ व लड़कियां घरों के बाहर, बागों व सार्वजनिक स्थानों में झूले डालकर झूलती हैं । इस दिन को पिकनिक और घूमने-फिरने का दिन माना जाता है । किसी बाग में अथवा नदी के तट पर जब आकाश बादलों से आच्छादित हो, और रिमझिम बारिश बरस रही हो तब भाद्रपद की कृष्णपक्ष की तृतीया के दिन यह त्यौहार मनाया जाता है । इसे काजली तीज भी कहकर पुकारा जाता है क्योंकि बादलों से आच्छादित अंधकारमय वातावरण में बरसती बारिस में इस त्यौहार को मनाते हैं और आनन्द लेते हैं । साहित्यिक कृतियों से भी पता चलता है कि

स्त्रियाँ भाद्रपद में हरा पेटीकोट, लाल साड़ी और बहुरंगी चोली धारण करती हैं । इसी वेशभूषा में वह तीज का मेला देखने जाती है । पुरुष भी मेले में जाते हैं और स्त्रियाँ और कुंवारी कन्याओं के साथ ढिढोले करते हैं । सामुहिक संगीत त्यौहार की शोभा बढ़ाते हैं । रात के समय तीज का त्यौहार समाप्त हो जाता है । स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व राजे -महाराजे तीज के दिन दरबार आयोजित करते थे । कलाकारों और अन्य व्यक्तियों को ईनाम-इकराम देते थे । राजा, ठाकुर व दरबारी अपने साथियों के साथ लोगों के मनोबल को बढ़ाने के लिए मेलों में जाते थे । कर्नल टॉड ने लिखा है कि राजस्थान के चरवाहा तीज के त्यौहार को एक शुभ दिन मानते हैं । वे अपनी छोड़ी हुई झोंपड़ी में पुन: लौट आते हैं । 300 पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का जुलूस गाजे -बाजे के साथ जिसमें औरतें पीतल के बर्तनों में जल भरकर अपने माथे पर रखती हैं । यह सब सुहालिया गीत गाते हुये गांव में दाखिल होती थी । यह वर्णन कर्नल टॉड ने कपासन के तीज के त्यौहार और मेले के सम्बन्ध में किया है । इस प्रकार तीज का त्यौहार राजस्थान की संस्कृति के साथ उसी प्रकार जुड़ा हुआ है, जैसे गणगौर । हिन्दू धर्म की पौराणिक गाथाओं के अनुसार शिव पार्वती का दीर्घकालिन योग के पश्चात तीज के दिन ही मिलाप हुआ था । उनकी स्मृति में तीज का त्यौहार मनाया जाता है । भाई अपनी बहिनों को इस त्यौहार पर लहरिया साड़ी भेंट में देते हैं । जिसे नवयुवतियाँ बड़े शौक के साथ धारण करती हैं ।

26.06 गणेश चतुर्थी

भाद्र पद की चौथ के दिन, जो आमतौर पर सितम्बर माह में आती है, उस दिन गणेश जी का जन्मदिन त्यौहार के रूप में मनाया जाता है । पौराणिक गाथाओं के अनुसार गणेश युद्ध के देवता हैं । गणेश की मिट्टी की मूर्ति बनायी जाती है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में पूजता है और उसके बाद निकट के मन्दिर में जाकर मूर्ति की आराधना करते हैं । जोधपुर राज्य की हकीकत वही से जानकारी मिलती है कि इस दिन गणेश को मोतीचूर का मोदक भेंट के रूप में चढ़ाया जाता है । इसके ऊपर चांदी का वर्क लगा हुआ होता है । इस त्यौहार को बहुत ही अधिक वृद्धता और उत्साह के साथ मनाया जाता है । पौराणिक गाथाओं में गणेश को शिव का पुत्र और उत्तराधिकारी बताया गया है । शिवजी ने अपने उत्तराधिकारी का मनोनयन करते समय गणेश सहित अपने तीनों पुत्रों को अपने पास बुलाया और उनको आदेश दिया कि विश्व का भ्रमण करने के लिए दौड़ जाओ जो प्रथम आयेगा वही उनका उत्तराधिकारी होगा । लेकिन उस समय गणेश वहां से हिला तक नहीं । उसने अपने भाईयों को आता देखकर शिवजी के तीन चक्कर लगाये और पिता से निवेदन किया कि वह दौड़ में प्रथम आया है । शिवजी के पूछने पर उसने उत्तर दिया कि 'शिव ही संसार है ' मैने उनके तीन चक्कर काटकर संसार के तीन चक्कर लगा लिये । जबकि मेरे भाईयों ने केवल एक ही चक्कर लगाया है । इस उत्तर से शिवजी प्रसन्न हुये और उन्होंने गणेश को उचित स्थान प्रदान किया । इस त्यौहार के दिन गणेश देवालय सजाये जाते हैं और देवताओं को भेंट स्वरूप मोदक चढ़ाये जाते हैं । राजस्थान में रणथम्भौर और जयपुर के गणेश देवालयों की बहुत अधिक मान्यता है । वैसे गणेश जी को प्रत्येक शुभ कार्य से पहले विशेष तौर पर शादी ब्याह के अवसर पर न्यौता दिया जाता है । गणेश को युद्ध के देवता के अतिरिक्त समृद्धि का प्रतीक भी माना जाता हैं । अतएव राजस्थान के लोगों की इसमें बहुत अधिक श्रद्धा और विश्वास है ।

26.07 दशहरा

जैसा कि डॉ. जगदीश सिंह गहलोत ने लिखा है कि गणगौर के अलावा दशहरा भी राजस्थानियों का एक विशिष्ठ त्यौहार है । इस पर्व को आसोज मास की शुक्ला दसवीं के दिन मनाया जाता है । गाथाओं के अनुसार इसी दिन भगवान राम ने रावण के ऊपर विजय प्राप्त की थी । इससे पहले नौ दिन तक नवरात्री मानाया जाता है । नवरात्रे के दिन लोगदुर्गा की पूजा आराधना करते हैं । दुर्गा की राजस्थान में विभिन्न रूपों में पूजा की जाती है अर्थात् रुद्राणी, महाकाली और चंडिका के रूप में पूजा आराधना की जाती है । जोधपुर की हकीकत वही महाराजा विजय सिंह के द्वारा नागौर के हाकिम के नाम 1788 ईसवीं के पत्र की प्रतिलिपी सुरक्षित है, जिसमें दशहरे के त्यौहार को मनाने की विधि और आदेश प्रसारित किया गया था । उस पत्र को पढ़ने से दशहरा पर्व से सम्बन्धित रीति रिवाजों तथा औपचारिकताओं पर प्रकाश पड़ता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व राजस्थान के रजवाड़ों में दशहरा का त्यौहार विशेष उल्लास और भव्यता के साथ मनाया जाता था । राजा को उसके अधिनस्थ पदाधिकारी नजर पेश करते थे । इसके एवज में राजा उन्हें उपाधियाँ और सम्मान प्रदान करते थे । दशहरे के मेले के अवसर पर हाथी और घोड़े अस्तबलों से निकाले जाते थे और जुलूस के रूप में उनका प्रदर्शन किया जाता था । इनको पूर्ण रूपेण सजाया जाता था । जहांगीर ने अजमेर में रहते हुये दशहरा का पर्व राजपूत परम्परा के अनुकूल मनाया था । सम्राट अकबर तो अपने दरबार में सदैव दशहरा का त्यौहार मनाया करते थे । उस अवसर पर सजे-धजे हाथी और घोड़े, निरीक्षण के रूप में लाये जाते थे । इसके बाद जुलूस सांवी वृक्ष के पास जाकर समाप्त हो जाता था । उस रोज रोशनी की जाती है और पटाखे चलाये जाते हैं । राजस्थान के राजा अपने राजमहलों के बाहर आकर अपने पड़ौसियों के विरुद्ध एक अभियान आयोजित करते थे । जिसे अहरिया शिकार कहकर सम्बोधित किया जाता था । यह इस स्मृति में किया जाता है कि मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने इसी दिन बदनौर के ठाकुर के विरुद्ध कूच किया था । डॉ. आर.सी. दत्त ने अपनी पुस्तक 'रेम्बल्स ऑफ इंडिया' में लिखा है कि दशहरा का त्यौहार राजस्थान में पूरे जोश और वृद्धता के साथ मनाया जाता है । इस दिन राजपूत अपनी तलवारों का पूजन करते हैं । डॉ. दत्त आगे लिखते हैं कि उन्होंने जयपुर महाराजा को उनके मंत्रियों सहित शस्त्रों की पूजा करते हुये देखा था । फिर महाराजा एक जुलूस के रूप में उल्लास वर्धक लोगों के बीच पहुँच जाते थे और पारस्परिक आनन्द लेते थे । दशहरा के दिन पटाखे और रोशनी की जाती थी । उसके बाद डॉ. दत्त यह देखकर बहुत प्रभावित हुये कि सामान्य व्यक्ति बड़े गर्व और आनन्द के साथ शासक के प्रति श्रृद्धा प्रकट करते थे । दशहरे के अवसर पर गांव एवं कस्बों में रामलीला का आयोजन किया जाता है, जिसमें सैकड़ों और हजारों व्यक्ति एकत्रित होते हैं । अंतिम दिन राम अपने वाण से रावण की हत्या करता है उसके तत्काल बाद रावण का पुतला जलाया जाता है । मध्य काल में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व इस पर्व का विशेष महत्व रहा है । भारत में जिस प्रकार मैसूर एवं कुल्लू घाटी का दशहरा प्रसिद्ध है उसी प्रकार राजस्थान में कोटा का दशहरा विख्यात है । राजस्थान की औद्योगिक नगरी कोटा में इस प्राचीन परम्परा का निर्वाह बहुत ही कुशल ढंग से होता है ।इस दिन जहां दशहरा मैदान में एक भारी मेला लगता है वहीं पुराने रईसों का जुलूस भी निकलता है । उससे पूर्व रामलीला का मंचन होता है तथा विभिन्न सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों का आयोजन होता है । विशाल पशु मेला भी लगता है ।

26.08 सांझी

श्राद्ध पक्ष में मेवाड़ प्रदेश की बालिकाएँ सांझी के रूप में पितरों का श्राद करती हैं । इन दिनों वे घरों को सजाती हैं व मांडणे मांडे जाते हैं । मन्दिरों में भी चित्र कोरे जाते हैं । जयपुर के चौथ माता के मन्दिर में संमन्या माता के दर्शन कराये जाते हैं । मेवाड़ में तो इसकी छटा ही निराली है ।

26.09 शरद पूर्णिमा

आसोज (अश्विन) मास में पूर्णमासी के दिन शरद पूर्णिमा का त्यौहार मनाया जाता है । मारवाड़ में इस दिन महल के विभिन्न भागों को स्वेत रंग की वस्तुओं से सजाया जाता था । विशेष भोजन बनाया जाता है । जिसमें चावल और दूध अवश्यंभावी होता था । सफेद फूलों से पूजा की जाती थी और सफेद फूलों से ही सजावट की जाती थी । इस दिन लोग व्रत भी रखते हैं । इस दिन लोग रात्री के समय अपने घरों में खीर जिसमें शहद मिला हुआ होता है खुले राजस्थान बर्तनों में रखते हैं ताकि पूर्ण चंद्रमा की उस पर किरणें पड़े और वह खीर मनुष्यों को स्फूर्ति तथा उनके नेत्रों को ताजगी प्रदान करें । आजकल शरद पूर्णिमा के दिन काव्य पाठों एवं संगीत सभाओं का आयोजन भी होता है ।

26.10 दीवाली

संस्कृत भाषा में दीपावली शब्द का अपभ्रंश दीवाली है । इसे रोशनी का त्यौहार दीपोत्सव कहकर भी पुकारा जाता हैं । यह हिन्दू समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण त्यौहार है । महालक्ष्मी का दो दिन पहले से ही पूजन प्रारम्भ हो जाता हैं । 1211 के शिलालेख और सत्रहवीं शताब्दी की साहित्यक कृतियों से पता चलता है कि मन्दिर, महल, सडकों, गलियाँ, निवास स्थान सभी पर कार्तिक अमावस्या के दिन रोशनी की जाती है । आमतौर पर दीवाली का पर्व अक्टूबर -नवम्बर माह में पड़ता है । कोटा के पुरालेखीय रिकार्ड को देखने से पता चलता है कि दीवाली के त्यौहार पर रोशनी के लिए दिल खोलकर धन व्यय किया जाता था । अकेले कोटा शहर में 6 मन तेल और 26 टांका रुई का प्रयोग रोशनी के लिए किया जाता था । पटाखे जिसमें मेहताब इत्यादि प्रमुख थे, उन्हें मेहताब खाने से खरीदकर सब वर्ग के लोग जलाते थे । दीवाली से पहले मकानों की सफाई और रग रोगन किया जाता था । समाज के विभिन्न वर्गो के लिए दीपावली का भिन्न- 2 रूपों में महत्व है । उदाहरण के लिए इस दिन का मंदिरों की स्थापना के लिए शुभ दिन माना जाता है । दीवाली के दिन लेखक अपनी कृतियों को प्रारम्भ करते अथवा समाप्त करते है । समाज के वैश्य वर्ण के लिए यह बहुत लोकप्रिय त्यौहार है । यह लोग इस दिन नये व्यवसाय को प्रारम्भ करते हैं । व्यापारी वर्ग इस रोज अपने खाते प्रारम्भ करते हैं और खातों के प्रथम पृष्ठ पर महालक्ष्मी तथा अपने आराध्य देवी देवता का उल्लेख करते हैं । दीवाली पूजन के दूसरे और तीसरे दिन जन साधारण अपने ईष्ट मित्रों और पड़ौसियों और परिचितों के घर रामा-श्यामा (अभिवादन) करने जाते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व कई देशी राज्यों में इस दिन दरबार लगाये जाते थे, जिसमें उच्च पदाधिकारियों की नजरें स्वीकार करने के बाद उनकी नियुक्ति और पदोन्नति के आदेश प्रसारित किये जाते थे ।

दीवाली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा होती है । इस रोज पशुओं की विशेष रूप से गायों की पूजा होती है । कोटा, नाथद्वारा व कांकरोली में इस दिन बहुत सी गायें श्रीनाथ जी को भेंट में चढ़ायी जाती थी । घरों में गोवर्धन की आकृति गोबर से मनायी जाती है । पूजन के बाद अन्नकूट का त्यौहार मनाया जाता है । अन्नकूट को मनाने की प्रथा का चित्रण समकालिन चित्रों में है जो 18वीं शताब्दी के दस्तावेजों के साथ संलग्न है । इस रोज उबाला हुआ अथवा छौंका हुआ अनाज और मिठाई नाथद्वारा में श्रीनाथ जी को और कांकरोली के ईष्ट देवता को चढ़ायी जाती है । लौढ़ा भील इस दिन अपने लूट का कुछ भाग देवता को चढ़ाते हैं । इसके बाद भाई दूज के त्यौहार पर बहिनें अपने भाईयों के टीका लगाती है, उस रोज भाई अपनी बहिनों को उपहार और बहिनें भाईयों को मिठाई देती है ।

26.11 मकर संक्रान्ति

मकर संक्राति का त्यौहार माघ माह में मनाया जाता है । इस दिन लोग दान दक्षिणा देते हैं । सामान्य वर्ग के लोग इस दिन ब्रह्म भोज का भी आयोजन करते हैं । संक्राति के पर्व पर तिल के पकवान चीनी अथवा गुड़ को मिलाकर बनाये जाते हैं । सामूहिक रूप से बच्चे और नवयुवक और कहीं - 2 वृद्ध व्यक्ति भी गुल्ली डंडा खेलकर मनोरंजन करते हैं । जयपुर में संक्रान्ति के पर्व से पहले ही पतंगबाजी प्रारम्भ हो जाती है । सार्वजनिक मनोरंजन का एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण संक्रांति के दिन देखने को मिलता है । हिन्दू त्यौहारों में यह अकेला त्यौहार है जो ईसवी कलेण्डर के अनुसार जनवरी माह की 14 तारीख को ही मनाया जाता है ।

26.12 बसन्त पंचमी

माघ माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन बसन्त पंचमी का त्यौहार मनाया जाता है । इस दिन ब्राह्मण अथवा समाज के सभी वर्गों के प्रबुद्ध लोग एकत्रित होकर वाद विवाद तथा विचार विमर्श करते हैं । 1488 के एकलिंग शिलालेख से प्रकट होता है कि सोमनाथ ब्राह्मण ने बसन्त पंचमी के दिन पंडितों को आमंत्रित करके शास्त्रार्थ का आयोजन किया था । इस त्यौहार को सामान्य लोग भी उत्साह के साथ मनाते हैं । महिलाऐं किसी उद्यान में जाकर अथवा किसी तालाब के किनारे पहुँच कर पुष्पों और सन्दल की कारत से पूजा करती हैं । जुलूस बनाकर जाती है । स्त्रियाँ मधुर गीत गाते 28 हुए अपने श्रृंगार के लिए फूल और पत्तियों का प्रयोग करती हैं । उदयपुर में बसन्त पंचमी के दिन विशेष आयोजन किया जाता था । राजस्थान में कोटा में बसन्त पंचमी के अवसर पर दरबार आयोजित किया जाता था, जिसमें सामन्त पीले रंग के वस्त्र धारण किये हुए उपस्थित होते थे । फूलों और मालाओं का आदान प्रदान करके जुलूस में किसी मन्दिर तक जाते थे ।

26.13 होली

प्राचीन काल से होली का त्यौहार हिन्दू समाज में विशेष रूप से लोकप्रिय रहा है । फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन यह त्यौहार मनाया जाता है । होलिका दहन के बाद दूसरे दिन रंग की होली खेली जाती है । लोग एक दूसरे के गुलाल और अबीर लगाते हैं । इस त्यौहार के दिन सामाजिक भेदभाव

और आयु का भेदभाव नहीं रहता । सभी वर्ग के लोग चाहे वृद्ध हो अथवा बच्चे, भरपूर मनोरंजन करते हैं । एक दूसरे के ऊपर रंग मिला हुआ पानी डालते हैं । पौराणिक गाथाओं के आधार पर होली के जो चित्र चित्रकारों के द्वारा बनाये गये हैं, उनसे होली के सामाजिक महत्व और भरपूर मनोरंजन के साधन के रूप में इस त्यौहार का स्मरण किया जाता है । राजस्थान के राजपूत राजा हाथियों पर सवार होकर सवारी निकालते थे । दर्शक गण विशेष रूप से नारियाँ अपने मकानों की झरोखों में गाती हुई राजा का स्वागत करती थी । सड़को पर शाही सवारी को देखने के लिए लोगों की कतार जमा हो जाती थी । उस समय रंग का आदान प्रदान भी किया जाता था । इस दिवस पर सामान्य व्यक्ति भी अपने राजा को रंग लगा सकते थे । जोधपुर में यह त्यौहार विशेष उत्साह के साथ मनाया जाता था । महाराजा विजयसिंह के शासन काल में रंगीन जल की ट्यूब भरकर महलों के आगन में रख दी जाती थी, जिससे वे अपने सामंतों के साथ होली खेलते थे । राजपूत रणिवास में भी होली खेलने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है । होली के दिन दरबार आयोजित किये जाते हैं । मुगल बादशाहों ने भी इस त्यौहार का आयोजन करके भरपूर मनोरंजन किया था । सियार उल मुताखारिन में होली के त्यौहार को हिन्दुओं के एक विशेष उत्साह के रूप में मनाने का विस्तृत वर्णन लिपिबद्ध है, जब समाज का हर व्यक्ति भेदभाव भुलाकर भरपूर आनन्द लेता था ।

राजस्थान में कुछ स्थलों की होली बहुत चर्चित है । भिनाय कस्बे में लोग दो गुटों में बंट जाते हैं और एक दूसरे के ऊपर कोड़ों का प्रहार करते हैं । ब्यावर में देवर भाभी की होली प्रसिद्ध है । श्री महावीर जी की होली में महिलाएं पुरुषों पर लट्ठ का प्रहार करती है तथा बाड़मेर में इलोजी की सवारी निकलती है । कोटा के सांगोद एवं आवाँ कस्बे का ' 'न्हाण ' प्रसिद्ध है ।

इसके अलावा अक्षय तृतीया, रथयात्रा, हिण्डौला राधा अष्टमी, देवता पूजन, पंच कल्याणिका और जल यात्रा ऐसे त्यौहार हैं जो धार्मिक होने के साथ साथ सामान्य जनता के मनोरंजन के साधन भी थे ।

26.14 मुस्लिम समाज के त्यौहार

मुसलमान मोहरर्म, ईद - ए- मिलाद, शबरात, ईदुल फितर, ईदुल जुहा और बारावफात के त्यौहार मनाते हैं । मोहर्रम के अवसर पर मुसलमान गमगीन हाल में जुलूस के रूप में ताजिये को ले जाते हैं । जुलुस में जो जन समुदाय सम्मिलित होता है वह शोकग्रस्त स्थिति में चलते हुए जरूरत मंदों को दान दक्षिणा देते जाते थे । ईदुल मिलाद हजरत मोहम्मद साहिब की याद में मनाई जाती है । रवी उल अव्वल की 11 तारीख को मुस्लिम समुदाय आनन्द के साथ इस त्यौहार को मनाते हैं । दावतों का आयोजन किया जाता है । शब -ए -वरात हजरत मोहम्मद की मृत्यु की याद में रवी -उल -अव्वल की 14 तारीख को मनायी जाती है । इस अवसर पर अजमेर के दरगाह बाजार में रोशनी की जाती है । ईदुल फितर रमजान की समाप्ति पर मनाया जाता है । इस दिन मुस्लिम भाई एक दूसरे के घर ईद मुबारक करने जाते हैं, मित्रों और सम्बन्धियों के यहाँ जाते हैं । पटाखे चलाते हैं और गरीबों को दान दिया जाता है । ईदुल जुहा या बकरा ईद जिल ईज माह की 10 तारीख को मनायी जाती है । इस रोज बकरे और भेड़ की कुर्बानी दी जाती है । बारावफ़ात रवी उल अव्वल माह में हजरत मोहम्मद के जन्म और मृत्यु दिवस की याद में मनायी जाती है ।

26.15 जैन त्यौहार

जैन समुदाय पर्युषण का त्यौहार मनाता है । यह भाद्रपद माह में आठ दिन तक मनाया जाता है । जैन ग्रन्थों से प्रकट होता है कि इस दिन जैन समुदाय के लोग अपने सगे सम्बन्धियों, परिचितों और मित्रों को क्षमा याचना संदेश पत्रों के माध्यम से भेजते हैं । प्रत्येक श्रावक को इस दीन जैन देवाल्य में जाकर पूजा अर्चना करनी पडती है ।

दूसरा जैन त्यौहार आष्टाहिक है, जो आठ दिन के कारण इस नाम से लोकप्रिय हो गया है । यह जैनियों का बहुत प्राचीन त्यौहार है, जो चैत्रमाह की कृष्ण पक्ष की तीसरी तारीख को मनाया जाता है । आठ दिन तक चलता है और दसवीं के दिन समाप्त हो जाता है । इस त्यौहार के अवसर पर जैन समुदाय के व्यक्ति स्नान करते हैं और पूजा अर्चना करते हैं ।

पंच कल्याणिका का त्यौहार 1230 ईसवीं में प्रारम्भ हुआ था । यह वस्तुपाल और तेजपाल की स्मृति में मनाया जाता है । इस त्यौहार के अवसर पर गर्भधारण करना, जन्म लेना, विद्या प्रारम्भ करना और साधु सन्यासियों की सेवा करना शुभ माना जाता है ।

रथ यात्रा भी जैनियों का एक प्राचीन त्यौहार है । इस त्यौहार के अवसर पर पूजा अर्चना के साथ यात्रा का भी आयोजन किया जाता है, ताकि जैन धर्म का व्यापक प्रचार प्रसार हो ।

जल यात्रा भी जैनियों का एक लोकप्रिय त्यौहार है । इस अवसर पर आराध्य देव की संगीत (शास्त्रीय और मौखिक) के द्वारा आराधना की जाती है । देवाल्यों में नृत्य आयोजित किये जाते हैं । इस त्यौहार का वर्णन सबसे पहले श्रृतुंज्य शिलालेख में किया गया था जो 1530 ईसवीं का है ।

जैनियों का दीपमाला भी एक लोकप्रिय त्यौहार है इसका उल्लेख सर्वप्रथम जालौर से प्राप्त शिलालेख में मिलता है, जो 1211 ईसवीं का है । इस त्यौहार के अवसर पर लक्ष्मी पूजन किया जाता है, महावीर स्वामी के निर्वाण दिवस के रूप में भी इस दिन को मनाया जाता है, ताकि जो प्रकाश उन्होंने प्रदान किया था, उसका प्रचार प्रसार प्रतिवर्ष फैलता रहे । जैन लोग महावीर स्वामी के प्रकाश को प्रचार करने के उद्देश्य से दीप जलाते हैं ।

26.16 इकाई सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू जैन और मुस्लिम समुदाय के त्यौहारों का राजस्थान सांस्कृतिक जीवन में महत्व है । त्यौहार के माध्यम से लोगों को सामाजिक समागम का अवसर मिलता है, धार्मिक आस्थाओं की पूर्ति का अवसर मिलता है और सांस्कृतिक गतिविधियों को आयोजित करने का बहाना मिलता है । राजस्थान में अनवरत रूप से युद्धकालिन परिस्थितियाँ रही हैं । अकाल, अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण होते रहते हैं । इसके उपरान्त भी त्यौहारों को मनाने की परम्परा में कोई शिथिलता नहीं आयी है । कोटा के पुरालेखीय दस्तावेजों को देखने से पता चलता है कि कुंजदिया एक मुस्लिम स्त्रियों का समुदाय था जो त्यौहारों के अवसर पर नृत्य करके अपना जीवन निर्वाह करते थे । 1767 की जोधपुर राज्य की हथबही से पता चलता है कि दशहरे के त्यौहार में मुसलमान अवश्य भाग लेते थे । अजमेर के दरगाह रिकार्ड से पता चलता है कि

हिन्दू जाति के लोग उर्स के मेले में भाग लेते थे । जैन लोग भी हिन्दू त्यौहारों में विशेष रूप से तीज और गणगौर में भाग लेते थे ।

राजस्थान में प्रतिमाह पर्व एवं त्यौहार है चैत्र सुदी एक को नया साल लगने पर नये साल का पतड़ा सुनते हैं । तत्पश्चात नौ दिनों की रामायण होती है नवरात्रि में देवी पूजा होती है तथा रामनवमी को भगवान राम की अराधना की जाती है । वैशाख में आखातीज का पर्व आता है । शुक्ल पक्ष की चौदस को नरसिंह भगवान की आरती होती है । ज्येष्ठ सुदी 10 को गंगा दशहरा आता है । श्री नाथ जी की विशेष पूजा होती है ग्यारस को निर्जला ग्यारस का व्रत होता है । आषाढ़ सुदी द्वितीया को जगदीश जी की रथयात्रा है और पूर्णिमा को गुरुपूर्णिमा है । श्रावण मास तो पर्वों का ही है । नागपंचमी, तीज, सोमवार व्रत, रक्षा बन्धन आदि पर्व आते हैं । भाद्रपद में बूढ़ी तीज, चाना छठ, केसरिया जी छठ, जन्माष्टमी, वत्सद्वादसी, रामदेव जी, काज का व्रत आदि पर्व हैं । आश्विन मास में नवरात्रि, दशहरा, शरद पूर्णिमा आदि जैसे महत्वपूर्ण त्यौहार एवं पर्व हैं कार्तिक मास तो प्रतिदिन सुबह नहा कर धर्म के प्रति आस्था दिखाने का मास है । इसी माह में तीरायन व्रत (9 - 10 - 11 वीं), करवा चौथ, होई (अष्टमी) के साथ -साथ दीपावली, भैयादूज जैसे त्यौहार है, मंगसीर या मार्गशीर्ष में एकादशी एवं गीता जयन्ती का पर्व है । पोष के महिने में मकर संक्रान्ति तथा माह में चौथ का व्रत, सूर्य सप्तमी तथा बसन्त पंचमी का उत्सव मनाया जाता है । फाल्गुन की तेरहस को शिवरात्रि का व्रत, बारहस को खाटू श्याम जी की जात, आस माता की पूजा तथा होली का त्यौहार मनाया जाता है ।

26.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये ।

(1) सांझी पर्व कहा व किन प्रसंगों में मनाया जाता है ।

(2) मकर संक्रान्ति किन परिवर्तनों का सूचक है ।

(3) मुस्लिम समाज के कुछ त्यौहारों पर प्रकाश डालिये ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

(1) तीज त्यौहार का राजस्थान के जीवन में क्या महत्व है ।

(2) जैन समाज के मुख्य त्यौहारों पर प्रकाश डालिये ।

(3) गणगौर सांस्कृतिक जीवन की एक सफल अभिव्यक्ति है, व्याख्या कीजिए ।

इकाई सं. 27 ‘ ‘ खेलकूद ‘ ‘

इकाई संरचना

27.01 उद्देश्य

27.02 प्रस्तावना

27.03 पशुयुद्ध

27.03.1 भैसों की लड़ाई

27.03.2 सुअरों की लड़ाई

27.03.3 बैलों की लड़ाई

27.03.4 मेढ़ों की लड़ाई

27.03.5 शेरों की लड़ाई

27.04 सांटमारी

27.05 आखेट

27.06 इकाई सारांश

27.07 अभ्यासार्थ प्रश्न

27.01 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में राजस्थान के पारम्परिक साहसिक खेलों का विवरण दिया गया है जो कि राजस्थानी सामन्ती जीवन व संस्कृति के अभिन्न अंग थे । इन लेखों में साहस एवं रोमांच भरा होता था, विशेषकर परस्पर पशुओं के युद्ध में अथवा मानव एवं पशु के मध्य युद्ध में । इसके अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे कि सामन्ती जीवन में आखेट एवं पशु युद्ध का क्या स्थान था व किस प्रकार वे मनोरंजन के साधन थे । राजस्थान की लोक गाथाओं एवं चित्रों में इस प्रकार के विवरण भरे हुए हैं । आजकल इन खेलों को पशुओं पर अत्याचार की दृष्टि से देखा एवं समझा जाता है तथा अनेक पर प्रतिबंध लगा दिये गये हैं । लेकिन ये सारे खेल स्वतन्त्रता पूर्व तक जन जीवन के अध्याय रहे हैं । इसी कारण इनका अलग से परिचय कराया जा रहा है ताकि संस्कृति एवं पर्यटन की दृष्टि से इसका मूल्यांकन किया जा सके ।

27.02 प्रस्तावना

हमारे यहां सदियों से कई प्रकार के शौक, खेल, आमोद -प्रमोद के साधन चले आ रहे हैं जो कि अपने आप में बड़े रोमांचक व साहसिक हैं । देश और काल से उनका जुड़ा रहना स्वाभाविक था, शारीरिक बल और निर्भयता की उनमें नितान्त आवश्यकता थी । उन स्पोर्टस और गेम्स में कई तो विलुप्त हो चुके हैं और उनके पुनर्जीवित होने की भी सम्भावना नहीं है । कई नष्ट होने के कगार पर खड़े हैं, कुछ प्रचलन में है । उनमें से कुछ का विवरण इस इकाई में दिया जा रहा है ।

घुड़ सवारी, मेख उपड़ाई, बल्लममारी, तैराकी, जलयुद्ध, गोताखोरी, मल्लयुद्ध, पट्टेबाजी, मुक्काबाजी, करौत के हाथ, हाथियों की लड़ाई, सांटमारी, हिंसक पशुओं से लड़ाई, शेर और सुअर की

लडाई, बैलों की लड़ाई, भैंसों की लड़ाई, बाजदारी, मैंढ़ो की लड़ाई, दशहरे पर चौगान्या छोड़ना, शिकारी कुत्ते, निशानेबाजी, दुर्गम पहाड़ियों पर चढ़ाई, दहकते अंगारों पर चलना आदि आदि कुछ का विस्तृत उल्लेख इस प्रकार से हैं ।

27.03 पशु युद्ध

आमोद -प्रमोद का सांस्कृतिक जीवन में विशिष्ट स्थान रहा है । मध्यकाल तक समाज में अनेक प्रकार की मनो -विनोद सम्बन्धी क्रीड़ाओं का प्रचलन था । वैसे जो प्राचीनकाल से ही मनोरंजन के अनेक साधनों का विकास हुआ है जैसे शिकार खेलना, पशुओं की लड़ाईयाँ, पक्षियों को पालना उनसे अनेकानेक मनोरंजन करना आदि यहां के मनोरंजन के प्रमुख साधनों में से रहे हैं ।

मध्यकाल में कबूतरबाजी, एवं मुर्गों की लड़ाई सार्वजनिक आमोद -प्रमोद का साधन बन गये थे । पक्षियों में तोता, मैना पालना, उनसे बातें करना तथा उन्हें पढ़ाना आदि मनोरंजन हेतु ही किया जाता था । बाज को भी पाला जाता तथा उसे प्रशिक्षित कर उड़ान भरवाना, बाज लड़वाना आदि से मनोरंजन करवाये जाते थे । छोटे पक्षियों के शिकार भी उनसे करवाये जाते थे । कबूतरों को भी पाला जाता तथा प्रशिक्षित करवाया जाता था । बाज -कबूतर के खेल से भी मनोरंजन किया जाता था । पक्षियों में तीतर भी पाले जाते तथा लड़ाये जाते थे । तीतर -मुर्गे का भी युद्ध कराया जाता था । समाज के उच्च एवं निम्न वर्गों में मुर्गों को भी मनोरंजन हेतु पाला जाता था तथा मुर्गों की लड़ाई के आयोजन प्राय: किये जाते थे । मुर्गे की हार -जीत से आदमी की अथवा वर्ग विशेष की हार -जीत का फैसला किया जाता था ।

राजसी काल में राजा के मुर्गे से रानियों के मुर्गे टक्कर लेते थे । युद्ध के लिए 30 हाथ घेरे का गोला बनाया जाता था । इसके बीच बनी ऊंची वेदी पर सपरिवार शासक बैठकर लड़ाई का आनन्द लिया करते थे । लड़ने वाले मुर्गे की टांगों में पेनी छुरियां बांध दी जाती थी । लड़ते समय जो मुर्गे अपने विपक्षी के किसी अंग पर चोट पहुँचाता था उसी की विजय होती थी । विजयी मुर्गे के पक्ष के लोग हारे हुए मुर्गों के तरफदारों की पीठ पर सवार होकर उनकी हंसी उडाते थे ।

तीतरों की लड़ाई एक विशेष प्रकार के अखाड़े में होती थी । भागने वाले तीतर की हार होती एवं लड़ते हुए किसी की चोंच टूट जाय तो दोनों को बराबर माना जाता था ।

पशुओं की लड़ाई

मध्यकाल में अनेक प्रकार से पशुओं की लड़ाईयां करवा कर यहाँ के शासक वर्ग व जनता अपना मनोरंजन किया करती थी । कुछ उदाहरण निम्नलिखित दृष्टव्य हैं -

27.03.1 भैंसों की लड़ाई

भैंसों को लड़ाने से पूर्व उनके अंगों पर कीचड़ का लेप चढ़ाकर उन्हें नीम की पत्तियों की माला पहनाते थे तथा दोनों को आमने -सामने खड़ा कर दिया जाता था । दोनों पशुओं को भिड़ाने के लिए ग्वाले थपोड़ी पीटने और जोर-जोर से चिल्लाने लगते थे । तब भैंसे एक -दूसरे के सींगों के बल लड़ा करते थे । घायल होकर भागने वाला भैंसा हारा हुआ माना जाता था ।

दशहरे के अवसर पर बाहीवाल (भैंसा) को खूब शराब पिलाकर मैदान में छोड़ा जाता जिसे चोगन्या छोड़ना कहा जाता था । इसमें सर्वप्रथम नरेश के बर्छे से वार किया जाता फिर सरदार लोग

हाथ में तलवार लेकर घोड़े दौड़ाते हुए इस भैंसे को मारते थे । जोधपुर की हकीकत बहियों में इस प्रकार के अनेक उदाहरण दृष्टव्य हैं ।

27.03.2 सुअरों की लड़ाई

कीचड़ भरी जगह में सुअरों की लड़ाई कराई जाती थी । सुअरों की प्रिय खाद्य मक्की उन्हें खिलाई जाती थी । सुअर के पास ही बनी हौदी में बैठकर कीचड़ में क्रिया करते थे । दर्शक इनकी क्रिड़ाएं देखकर आनन्दित होते थे । इनके लिए अलग प्रकार की हौदी बनी होती थी । इस तरह की हौदी उदयपुर में ' 'खासा हौदी " के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

27.03.3 बैलों की लड़ाई

दीपावली के दूसरे दिन ' 'खेखरा " मनाया जाता, उनमें बैलों की लड़ाई का आयोजन किया जाता है । जीतने वाले बैल के मालिक का पगड़ी बांध कर सम्मान किया जाता ।

27.03.4 मेढ़ो की लड़ाई

मेढ़ो के सींगों में नारियल बांध दिये जाते । मेढ़े आपस में माथे की टक्कर मारते, टक्करों में नारियल टूट जाता चिटके बिखर जाती बच्चे चुन -चुन कर खाते इससे हंसी का सा अच्छा माहौल रहता ।

27.03.5 शेरों की लड़ाई

इस खेल के लिए अलग से स्थान बने होते दीवारों से घिरे बाड़े से, द्वार से शेरों को भीतर कर, शेरों की लड़ाई करवाई जाती थी ।

इसके अतिरिक्त जीव जन्तुओं से भी मनोरंजन हुआ करता था जिसमें सांप नेवले की लड़ाई, मदारी के खेल में रीछ, बन्दर आदि द्वारा वृद्ध बालक एवं स्त्रियां मनोरंजन किया करते थे ।

उपर्युक्त पशु एवं पक्षियों की लड़ाई से मनोरंजन तो होता ही था साथ ही शासक एवं जनता अन्य विविध साधनों से मनोरंजन किया करते थे । आखेट प्राचीन काल से ही मनोरंजन का प्रमुख साधन रहा है । इसकी लोकप्रियता अन्य वर्ग में अधिक रही है । प्राचीन काल के चित्रों में मानव -पशु युद्ध, पशु द्वन्द, आखेट का अंकन प्रमुखतया मिलता है । आखेट हेतु लश्कर लवाजमो से शासक वर्ग एवं जनता हाथी, घोड़े एवं ऊंटों पर अथवा पैदल धनुष बाण, खढ़ग से युक्त । होकर आखेट क्षेत्र में जाया करते थे । ये लोग डेरे डालकर कई दिनों तक शिकार क्षेत्र में रहते थे । राजस्थान के साहित्य में शिकार को महत्व दिया गया है तथा वीरता का प्रतीक माना गया है । विभिन्न प्रकार से शिकार किये जाते जैसे हिरणों के लिए गड्डे खोदकर शिकारी कुत्ते छोड़कर आदि से तथा इन्हीं कुत्तों से जंगली सुअरों का शिकार भी किया जाता । शेरो के लिए बड़े -बडे गड्डे खोदकर, मचाने बनाकर, उन्हें घेरकर, बकरा बांधकर, शिकार जाता था । वीर आखेटक को शूर एवं भरतार नामों से सम्बोधित किया जाता था । साथ ही शिकार सम्पादन पर दावतों का आयोजन भी हुआ करता था ।

27.04 हाथियों की लड़ाई और सांटमारी

मानव को सदा से पशु -पक्षियों से लगाव और प्रेम रहा है । वह उनसे प्रेम भी करता है और उन पर विजय भी चाहता है । यह भी चाहता है कि ये उसके आज्ञाकारी सेवक बने । इसी भावना ने

उसे शक्ति दी, बलशाली एवं शक्तिशाली पशु-पक्षियों को अपने बस में रखने की, अपनी आज्ञापालन करवाने की । उसने अपने इस कौशल का प्रदर्शन एक नहीं अनेक रूपों में किया है । प्रदर्शन का एक स्वरूप खूंखार, हिंसक, भीमकाय, पशु को प्रशिक्षण देने का है । यह शौक उनका मनोरंजन भी है । मनोरंजन के इन खेलों का एक लम्बा इतिहास है । स्पेन देश की 'बुलफाइंटिंग ' भी एक ऐसा ही शौक है । राजस्थान में हाथी के साथ सांटमारी का खेल भी बड़ा रोमांचक और साहस का एक नमूना है । आज से सौ वर्ष पहले यह सांटमारी का खेल राजस्थान में बड़ा प्रचलित था । खुले मैदान में घुड़सवार यह खेल खेलने का आनन्द लेते थे । इस खेल में पहले हाथी को शराब पिला कर मस्त कर देते थे । पांच सात घुड़ सवार अपने हाथों में भाले लेकर हाथी को ललकारते । मस्त हाथी उन घोड़ों के पीछे सूंड उठाये लपकता । हाथी की पहुँच में आये सवार को देखकर दूसरा सवार हाथी के पीछे से उस पर भाले का वार करता । भाले की चोट से तिलमिला कर हाथी पहले सवार को छोड़ वार करने वाले दूसरे सवार की तरफ मुड़ कर झपटता । पहले वाला सवार बच जाता । इस भांति हाथी पर वार करते एक -दूसरे को बचाते हुए यह साहसिक खेल खेला करते । कई बार हाथी तेजी से इधर -उधर मुड जाने के कारण गिर भी जाया करता था । घुड़ सवार बड़ी चुस्त पौशाक पहने रहते ताकि हाथी की सूंड में उनका कोई वस्त्र न आ सके । घोड़ों के बदन पर साबुन मिश्रित तेल का घोल लगाया होता था । घोड़े पर लगे इस मिश्रण के कारण सूंड फिसल जाती और वह पकड़ नहीं सकता था । इसी भांति चुस्त लंगोट बांधे शरीर पर साबुन -तेल का घोल लगाये पैदल सांटमार हाथी पर भाले का वार कर सांटमारी का खेल खेला करते थे । जहां यह खेल किसी मुहल्ले या राजमहल के प्रागण या अहाते में होता वह। पैदल सांटमार हाथी की पकड़ से बचने के लिए ड्योढ़ी, खिड़की आदि में घुसकर छिप जाते, फिर बाहर निकल कर लपकते और हाली पर वार करते । जयपुर में सांटमारी का खेल चौगान में खुले मैदान में कराये जाने का जिक्र मिलता है ।

राजस्थान के रजवाडों में हाथियों कीं लड़ाई का आयोजन भी एक खास खेल के रूप में प्रचलित था । उस जमाने में जयपुर राज घराने में भी अक्सर किसी खास मेहमान के आगमन पर उनके मनोरंजन के लिए हाथियों की लड़ाई के आयोजनों का जिक्र मिलता है । हाथियों की लड़ाई से पहले एक हाथी को अगड़ में छोड़ते और दूसरे हाथी को अगड़ से बाहर के ही उससे लड़वाते, यह एक सीमित लड़ाई होती थी, जिसे हाथियों की पूर्ण लड़ाई शुरू होने से पहले हाथियों को जोर करवाना या अगड़ की लड़ाई भी कहते थे । अगड़ जहां हाथी बांधा जाता है उसे पाखा भी कहते हैं । हाथी के ठाण के बाहर एक छोटी दीवार उठी होती थी, जिसे अगड़ कहते थे । एक हाथी अगड़ के इस तरफ और दूसरा हाथी अगड़ के उस तरफ होता था । दोनों की पहले आपस में माथों की सूंडों की और दांतों की टक्करें करवाई जाती थी । जिससे दोनों हाथी गुस्से में होकर एक दूसरे से गरमा जाते तो ईशारा पाते ही अगड़ में बन्द हाथी खुले में छोड़ दिया जाता और दोनों हाथियों में भयकर लड़ाई शुरु हो -जाती । लड़ाई बड़े जौसे से चलती, हाथी एक -दूसरे की टक्करों से पछाडे खाते, गिरते -उठते और फिर एक दूसरे पर चिँघाड़ते हुए वार करते । टक्करें इतनी जबरदस्त होती थी कि हाथी के दांतों की परचटे ऊपर गोखों में बैठे हुए दर्शकों तक पहुँच जाती थी । लड़ाई खत्म होने के बाद हाथी के महावत को इनाम, इकराम और शाबाशी दी जाती थी । लड़ाई से एक दिन पहले हाथी को तेज करने के लिए मसाले दिये जाते, महावत एक दूसरे को अपने द्वारा तैयार किस गये मसालों का फार्मूला नहीं बताया करते थे । लड़ाई के बाद मसालों के उतार के रूप में जौ का बिना छाना आटा दिया जाता जिससे लड़ाई से पहले दिये गये मसालों का उतार

होकर हाथो का मिजाज ठण्डा हो जाया करता था । गीजगढ़ ठिकाने का हाथी 'छत्रगज' लड़ाई में बड़ा तेज और ताकतवर था, उसके माथे की टक्कर कम ही हाथी झेल पाते थे । जब भी कभी हाथियों की लड़ाई का आयोजन होता 'छत्रगज' को उसमें जरूर शामिल किया जाता । छत्रगज के महावत उमराव खां थे, जो उसे बड़े लाड़ -प्यार से पाला करते और गलती करने पर उतनी ही सख्त सजा भी दिया करते थे । उमराव खां "छत्रगज" को दिया जाने वाला हाथी का रोट देशी घी में आटा गुंधवा कर उसमें सूखे मेवे और गुड़ डालकर नौकर से अपने सामने ही तैयार करवाते और अपने हाथों से छत्रगज को खिलाते थे ।

अक्सर यह बात प्रचलित है कि हाथी की रोटी अगर कोई चुराले और उसे चुराते हुए हाथी देखले तो हाथी उसका दुश्मन हो जाता है और कभी भी मौका पाकर उस पर हमला कर सकता था । ऐसे हादसे अक्सर उस जमाने में होते रहते थे, मगर हाथी फिर भी बंधे रहते, महावत बदल दिये जाते । बिगड़ेल और मस्त हाथियों को महावत अपने हुनर और जीवट से ठीक भी करते और कभी-कभी दुर्घटना का शिकार भी हो जाया करते थे । बिगड़ेल और मस्त हाथी को बस में करना और उनमें ऐब आजाने पर उनका ऐब निकालना भी उस जमाने में महावत बखूबी जानते थे । उनको साधने और बस में करने के लिए कुछ औजारों का भी इस्तेमाल किया करते थे ।

गजबांक जोड़ी - हाथी से सवारी लेते वक्त इस्तेमाल की जाती थी ।

अकड़ी की जोड़ी - अकड़ी की जोड़ हाथी के कानों के पीछे जबाड़ों की हड्डी का सहारा लेकर इस तरह लगाते कि सवारी के लिए चलते वक्त हाथी की गरदन नीचे नहीं झुके, शान से ऊँची रहे । यहीं अकड़ी की जोड़ हाथी को रोकने के काम भी आती ।

चिमटा, बिगड़ेती, गोखरू और सांकल : जब हाथी मस्ती में आकर ज्यादा बदमाशी करता, बस के बाहर हो जाता या किसी पर हमला करने पर आमादा रहता तो उसके पाव में चिमटा कांटेदार फांस कर दोनों पिछले पांवों में कैंची सी बांध देते और अगले पांव के आगे कांटेदार मोटे मोटे लोहे के गोखरू डाल देते । हाथी आगे के पाव पटकता तो गोखरू गड़ते और पिछले पांवों में जुम्बिश देता तो कांटेदार चिमटा डाली हुई कैंची उसे काबू में रखती थी । इसके अलावा लोहे की मोटी सांकलों से हाथी के पांवों के ऊपरी हिस्सों को खींचकर बांधते और गरदन पर मोटी सांकल बौर बिगड़ेती के साथ अकड़ी की जोड़ी फांस कर ऐसा जकड़ते कि हाथी की सारी मस्ती और बिगड़ेलपन ठीक हो जाता और कुछ ही दिनों में वह अपने महावत की ताबेदारी कबूल कर लेता । इसके अलावा मोटे रस्सों से बना बरांड़ा उसके पिछले पैरों के बीच में भर दिया जाता और गले में मोटी काफी वजनदार कण्ठी डाल दी जाती ।

जयपुर राजघराने का 'फतेहगज ' हाथी अपने लम्बे और मोटे दांतों व विशालकद काठी की वहज से अलग ही दिखता था । मगर उसमें एक ऐब था । जब भी उसे किसी सवारी के लिए सजा कर उस पर सवार होने के लिए उसे बैठा कर उस पर चढ कर बैठने के लिए सीढ़ियां लगाई जाती तो सीढ़ियां लगाते ही फतेहगज उठ खड़ा होता और हौदे पर बैठने नहीं देता । इस बात से महावत काफी परेशान थे ओर काफी जतन कर चुके थे । पर फतेहगज है कि अपनी हरकत से बाज ही नहीं आता था । आखिर नायला ठिकाने के महावत मोहम्मद अली खां के बेटे फैयाज खां ने उसे ठीक करने का बीड़ा उठाया । उस जमाने में जयपुर में बाबू के टीबे और पहाड़गंज जहां आज घनी आबादी बसी है तब रेत के टीबे ही टीबे थे । फैयाज खा वहां सवेरे सवेरे फतेहगज पर सवार होकर पहुँच जाते और

फतेहगज के अंकुश और गजबांक मार मार कर सिर्फ घुटनों के बल घन्टों चलाते और दोपहर ढलने के बाद ही फतेहगज को उसके ठाण में लाकर बांधते । कुछ ही दिनों में फतेहगज ने सीढ़ियां लगाने पर उठने की हरकत छोड़ दी थी । राजस्थान के रजवाडों में अक्सर मुसलमान महावत ही हाथियों पर तैनात थे ।

27.05 आखेट

राजस्थान के राजा लोग, जागीरदार तथा ठिकाने वाले शिकार के बड़े शौकीन थे । इसके लिए बड़े -बड़े कैम्प लगाते, बाहर से आये मेहमानों से शिकार कराया जाता, अपने पूरे परिवार के साथ वे जंगलों में पड़ाव डाले पड़े रहते । घने जंगलों में, पहाड़ियों में स्थाई और पक्के मूल और औदियां सैकडों की संख्या में बनी हुई है, जहां बैठ कर पीढ़ी दर पीढ़ी ये शिकार करते थे । यहां तक कि कुछ लोगों में तो शिकार ने व्यसन का रूप ले लिया था । किन्तु तटस्थ दृष्टि से पीछे मुड़ कर देखें तो रजवाडों में शिकार का व्यसन अवश्य था, परन्तु जीवों की रक्षा का पूरा पूरा प्रबन्ध भी किया जाता था । रक्षित जंगल भी होते थे और उनमें शिकार करने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता था । राजा लोग ऋतु के विपरीत न खुद शिकार करते थे और न किसी को करने दिया जाता था । सामान्य अवस्था में भी केवल अधिकृत व्यक्ति ही शिकार कर सकता था । गर्भाधान काल में शिकार करना पाप समझा जाता था पशु -पक्षियों तक के गर्भाधान काल की जानकारी सामान्य जन को भी होती थी और अधिकृत व्यक्ति भी प्रजनन के महीनों में शिकार नहीं कर सकता था । पशु-पक्षियों के शिकार करने के मौसम और महिने निर्धारित होते थे । जैसे, खरगोस की शिकार होली के बाद के केवल चार महीनों के अन्दर ही की जाती थी । जेठ मास के बाद खरगोश को मारना वर्जित था । इसी प्रकार अन्य वन्य जीवों के लिए भी समय निर्धारित था । हिरण और सूअर का शिकार सर्दियों में ही किया जाता था । मादा पशु के शिकार पर रोक थी । इसके पीछे भी एक विचार था कि यदि मादा का वध कर दिया जाये तो संख्या की वृद्धि रुक जायेगी । सूअर, हिरण, शेर, रीछ आदि पशुओं में तो नर -मादा का भेद आसानी से सब कर लेते हैं, किन्तु प्रेमी भागते हुए खरगोश तक की परीक्षा कर लेता था कि यह मादा है और फौरन अपनी बन्दूक नीचे कर रूपरेखा लेता । खरगोश के कान की बनावट से मादा और नर का पता चल जाता है । बच्चों के बड़े होने की आयु का पूरा (राज्य एवं पूरा ख्याल रखा जाता, पशु रक्षा संबंधी नियम तोड़ने वालों को सख्त सजा देने का आम रिवाज था । पर्यावरण का बडी कड़ाई से पालन कराया जाता । चोरी अथवा पोचिंग से वन जीवों को मारने वाले को कभी बख्शा नहीं जाता। मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह शिकार के बड़े शौकीन थे । साथ ही वह वन्य प्राणियों से बहुत प्रेम करते थे । पूरे मेवाड़ राज्य के पहाड़ों, वनों और वन्य जीवों का पूरा -लेखा जोखा रखते थे । पोचिंग करने वाले को उन्होंने कभी माफ नहीं किया । कहते हैं उनके पास शिकायत पहुँची कि अमुक व्यक्ति ने चोरी से सूअर मारा और उसका मास पका कर खाया । शिकायत सच्ची पाये जाने पर उस व्यक्ति की दाढे निकलवाने की सजा दी गई । ताकि भविष्य में वह सूअर का मास खा ही नहीं सके । यह घटना सही है या नहीं परन्तु ऐसी चर्चाऐं चलने से पोचिंग करने वालों में बड़ा खौफ रहता था । सचमुच में उस समय का शिकारी बन जीवों का प्रेमी था, रक्षक था यही कारण था कि उस समय वन जीवों की संख्या बहुत थी । सूअरों की संख्या बढ़ जाने पर गाव के कृषकों को परेशानी होती, क्योंकि वे फसलों को बड़ा नुकसान पहुँचाते । तेन्दुओं और भेड़ियों से भी ग्रामीण संभागों में कभी -कभी आतंक छा जाता । भेड़,बकरी , गाय आदि

की सुरक्षा की समस्या हो जाती तब उस इलाके के लोग आकर ठिकाने वालों, जागीरदारों तथा राज्य के हाकिमों को वहां की स्थिति की जानकारी देते और वहां शिकार करने के लिए आने का आग्रह करते । उस स्थिति में वह उस इलाके में शिकार के लिए जाते, कैम्प लगाते या किसी को अधिकृत कर वन जीवों के उत्पाद से जनता हो राहत दिलायी जाती । उस समय की स्थिति में ऐसे शिकार कैम्पों के बहुत लाभ से राजा का सीधा सम्पर्क अपनी जनता के साथ बना रहता । उस समय कोई बिचौलिया । कामदार आदि नहीं होता था राजा स्वयं ही अपनी आख से देखकर उसका निराकरण करता । तालाब बनाने के लिये उपयुक्त स्थल नजर आ जाते । जनता और राज्य की समृद्धि के लिये और विकास कार्य में तालाब का निर्माण ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता, कम वर्षा होने वाले प्रदेश में वर्षा की एक -एक बूंद का संग्रह फलप्रद है । जयसमुद्र और राजसमुद्र जैसे विशाल जलाशयों के स्थल ऐसे ही अवसरों पर निगाहों में आये थे ।

शिकार के कैम्प रात्रि को आमोद-प्रमोद के स्थल बन जाते । हाका देने के लिये बुलाए गए उस अचल के ग्रामीण अपना चंग बजाकर गाने लगते । शिकार के शौकीन मदिरापान से मस्त हो नाचने लगते । भील, गिरासिये इस मस्ती के आलम में सबसे दो कदम आगे रहते । आनी थाली, मादल की ताल पर, हाथ में रूमाल ले, सिर के केशों में बंधा और दर्पण का टुकड़ा खोस अपनी भीलनियों के साथ घंटों नाचते । भांति - भांति के स्वांग और नाच देखने को ग्रामीणों का हुजूम इकट्ठा हो जाता । भीलों के स्वत उनके अपने जीवन की रंगीनियों और दर्द से भरे होते । उनमें रोमांस और बहादुरी तो होती ही, साथ में हास्य और व्यंग्य के जरिए वे अपना दर्द भी जाहिर करते । उनका रोष और क्रोध सीधा सूदखोर बोहरों पर उतरता । कैसे अनपढ़ भीलों से बोहरा कर्ज के कागजों पर अंगूठा लगवाते हैं, हुबहू वैसी नकल उतारते, देखने वालों को मजा आ जाता । कैसे मौका आने पर जंगल में वे उससे छीना -झपटी कर बदला लेते हैं । अनेक प्रकार के स्वांग, संगीत, तमाशे और खेलों में आंचलिक सांस्कृतिक संपदा के दर्शन होते । उपर्युक्त पात्रों को कही जमीन या कुआ भरण -पोषण के लिए प्रदान कर कला को प्रोत्साहन भी दे दिया जाता था ।

दक्षिण-पूर्वी राजस्थान और सटे हुए मालवा प्रदेश में घने जंगल हैं । वन्य जीवों की भी बहुलता है । मौटे तौर से हाका ' लगाकर या मचान पर बैठकर शिकार किया जाता था । 'खज ' बांधकर पानी पीने के स्थान पर बैठकर भी शिकार किया जाता । मचान पेड़ पर बांधे जाते । उपयुक्त स्थानों पर 'मूल ' तथा ' ओदी ' स्थायी रूप से बनी हुई है । इनमें से कई 'मूल ' और ' ओदी ' तो भव्य इमारते हैं, जहां राजपरिवार कई सप्ताहों तक भृत्यगणों के साथ निवास करते, प्रकृति का आनन्द लेते । घना जंगल, दूर दूर तक फैली हुई वनस्पति, पहाड़ियां, घाटियाँ । भांति - भांति के वन्य पक्षियों का कलरव । वायु मण्डल को थर्राती सिंह गर्जना । वन्य जीवों का आवागमन । हिरन, चीतलों के झुंड । मनोरम चित्राकर्षक प्रकृति के बनते बदलते रुप की छटा इन ओदियों में बैठकर महिलाएं निहारा करती । इस आमोद -प्रमोद के लिये ले अपनी पतियों से आरजू-मिन्नत करती - " था " के संगड़े म्हाने ले चालो जी । " रणवास के घेरे से निकल, वन में घूमती, पहाड़ी से गिरते जल प्रताप के नीचे बैठकर स्नान करती, नदी -नालों में स्नान का आनन्द लेती । राजा अपनी रानियों के साथ जल क्रिया करते । तैरते, नहाते, पानी के खेल खेलते । गोठें चलती । जरूरत समझी जाती तो उधर से गुजरने वाले मार्ग पर पहरेदार बैठा दिया जाता, जो राहगीरों को उस समय उस राह में गुजरने से रोक देता । इकाई शिकार

तो सूअर या शेर का ही श्रेष्ठ माना गया है, जिसके लिए साहस, चुस्ती, फुर्ती और सटीक निशाना होना चाहिए। शेर को 'वन के राजा ' की अपाधि प्राप्त है, तो सूअर को ' भाखर के भोमिया ' (पहाडियों का भूस्वामी) की । राजा से भी अधिक भूस्वामी का भूमि पर अधिकार माना गया है, धरती पुत्र, धरती का रक्षक, अपने रक्त से भूमि को सींचने वाला ही ' भोमिया ' कहलाता है । गांवों में पूजा अर्चना ' भोमियाजी ' की ही होती है, राजा की नहीं । राजस्थान के लोक साहित्य में सूअर को धीरता, वीरता और शौर्य का प्रतीक माना गया हैं । वह पाड़ा, खुरा , एकल, शूकर, सुवीरयों, वराह, डाढाल, गैदन्ता आदि विशेषणों से अलंकृत है । सूअर का सही शिकार होता है घुड़सवारी से । एकल सूअर कें पीछे घोड़ा दौड़ाकर उसका शिकार करना काफी कठिन है । शिकारी के हाथ में भाला होता है । सूअर ऊंची -नीची पहाड़ियों, विकट मार्ग और झाड़ियों में होता सरपट भागता है । पीछे शिकारी घोड़े पर । एक हाश में घोड़े की लगाम, दूसरे हाथ में भाला । या तो वह सूअर का शिकार कर लेगा, या सूअर अपने तेज दंतशूलों से घोड़े का पेट चीर, शिकारी को धराशाही कर देगा । यही पर शिकारी के शौर्य, शक्ति, सूझबूझ और शस्त्राभ्यास की कुशलता की परीक्षा हो जाती है ।

' 'जाओ मेवाड़ा सूरा ' की शिकार एक लोकगीत है । इसे गृहणियाँ, महिलायें गाती है । इस गीत में सूअर, हरिण, चीतल आदि के शिकार का वर्णन है । यह उस समय के समाज के शिकार का रेखाचित्र है । किस प्रकार जागीरदार, ठिकाने वाले सर्दी की मौसम में शिकार के कैंप लगाते थे । आखेट के प्रोग्राम बनाते थे । मुख्य ध्येय तो जंगली सूअर का शिकार ही रहता था पर अन्य पशु पक्षियों की शिकार भी होती थी । गाड़ियों में लादकर सांभर, सूअर हरिण लाते थे । ऊंटों पर लादकर शिकार किये हुये सूअर । फिर उनका गोश्त गांव के लोगों में बांट देते । इस गीत में स्पष्ट है ब्राह्मण और बनियों को छोड़कर दूसरी जातियों में बांट दो ।

इसी भांति बीकानेर के महाराजा गंगासिंह जी के समय के शिकार -विवरण चर्चित हैं वे भी सर्दियों में शिकार के प्रोग्राम बनाते । बाहर से विशेष अतिथि राजा महाराजा, वायसराय, ए. जी जी. तथा उनके ब्रिटिश मित्रों को बुलाया जाता । बीकानेर में शेर तो नहीं होते । हीरन और विशेष पक्षी बटबुड और पानी के पक्षी आदि की बहुतायत रहती । ये पक्षी दिसम्बर जनवरी में बाहर से बड़े -बड़े झुण्डों में आते हैं इनका शिकार किया जात। ।

राजस्थान की लोक गाथाएं बताती है कि शिकार में राजस्थान की महिलाएं भी पीछे नहीं थी । अनेक गाथाएं मिलती हैं, पुरुष वेश धारण किए, घोड़े पर सवार हो भाले से वे शकर का शिकार करती थी । घोड़े पर सवार अपने पति के साथ शिकार में भाग लेती हुई वीरांगनाओं के अनेक चित्र मिलते हैं ।

शेर का शिकार पहले कटारी से भी किया जाता था । बांये हाथ में पंजे से कंधे तक मोटा रैजे का कपड़ा लपेटकर उस पर लोहे की बनी कड़ियों का आवरण चढ़ा के और उसी हाथ में ढाल लेकर दाहिने हाथ में कटारी का वार कर शेर का शिकार करने के किस्से सुने जाते हैं । महाराव बूंदी के यहां इस तरह के शेर का शिकार करने का तरीका प्रचलन में था । इसी तरह महाराव कोटा के यहाँ नाव में बैठकर शेर की शिकार करने का प्रचलन था । क्योंकि कोटा में चम्बल नदी है और उसके किनारे घना जंगल है । इसलिये नावों में बैठकर किनारे की तरफ हाका बुलवाया जाता । हाके की दबिश से जब शेर किनारे की तरफ बढ़ता तो उस समय वाह नाव में शिकार के लिये तैयार कोटा महाराव और

उनके सरदारगण शेर को देखकर उस पर बन्दूकों से निशाना लगाते और इस तरह पानी में नाव पर सवार होकर शेर का शिकार करते ।

इसके अलावा 'रवज ' बांधकर भी शिकार किया जाता । बकरा या भैंसा एक निर्धारित स्थान पर बांधा जाता । शेर उसे मारने के लिए आता । शिकारी पेड़ पर बंधे मचान पर या 'मूल ' पर बैठा होता । उस समय बन्दूक से निशाना लगा देता । पेड़ पर बंधे मचानों पर महिलाएं भी बैठती । लकड़ी की निसरणी (सीढी) के सहारे मचान तक चढती । रस्सी की बनी निसरणी भी उपयोग में ली जाती । छोटी सी चौकी पर महिला को बैठाकर चर्खी (पुली) के द्वारा भी ऊपर खीच लिया जाता। जैसे कुए में से पानी भरा चड़स निकालते हैं, उसी तरह । मध्य प्रदेश में वन बड़े घने हैं और वृक्ष भी खुब । वहां वृक्ष पर मचान बांधने का तरीका ज्यादा अपनाया गया है ।

'हाका ' देकर शिकार खूब किया जाता था । इसमें 'हाका ' देने के लिए काफी संख्या में पुरुषों की जरूरत पड़ती थी । वन्य पशु के आवागमन के मार्ग के पास, उपयुक्त ऊंचे स्थान, टेकड़ी आदि पर शिकारी बैठ जाते । 'हाका ' देने वाले पुरुषों की टोली, वन्य जीवों के रहने के स्थान पहाड़ी, गुफा, झाड़ी, झुरमुट आदि को घेरती, पत्थर फेकती, शोर मचाती वन्य जीवों को भागने के लिए विवश कर देती । ताशे भी बजाए जाते, ढोल बजाकर भी शोक किया जाता, पटाखे भी छोड़े जाते । वन्य जीव भयभीत होकर भागते । उन्हें उस मार्ग की ओर जाने को मजबूर कर दिया जाता, जहां आगे नुक्कड़ पर शिकारी बैठे होते । कई बार शेर, सूअर उस 'हाके ' को चीरते हुए दूसरी ओर निकल जाते, जिसे 'हाका फाड़ना ' कहते हैं ।

27.06 इकाई सारांश

इस इकाई में हमने राजस्थान के कुछ चुने हुए साहसिक खेलों का विवरण दिया है जो उस काल के लोगों की मानसिकता परम्पराओं एवं आमोद-प्रमोद के साधनों के प्रति उनके दृष्टिकोण का परिचय देते हैं । जैसाकि हमने प्रारम्भ में ही उल्लेख कर दिया एवं संस्कृति था आजकल इनमें से कुछ खेलों को अत्याचार की श्रेणी में भी रखा जाता है । लेकिन मध्ययुगीन जीवन की परम्पराओं की एक में इसकी चर्चा इतनी थी इनके विषयों को लोक कथाओं एवं चित्रों में भी लिया गया है । उन रोमांचक कार्यों में आखेट रूपरेखा एवं पशुयुद्ध उल्लेखनीय रहे हैं । आखेट करना सामन्ती जीवन की शान थी और इसमें स्त्रियाँ भी भाग लेती थी । आखेट करने के भी अपने तरीके एवं साधन थे तथा आखेट पर प्रतिबन्ध भी लगे हुए थे । पशु युद्धों में हाथियों की लड़ाई आकर्षक थी और सांटमारी के नाम से जाना जाने वाला यह खेल हाथियों एवं महावत के विशेष क्रिया कलापों का उल्लेख करता है । सामान्य जन जीवन में मुर्गों की लड़ाई, बैलों की लड़ाई व यहां तक कि सुअरों की लड़ाई आमोद -प्रमोद का साधन थी । मेलों एवं पर्वों पर इन पशु युद्धों का विशेष आयोजन किया जाता था । पशुओं को लड़ाई के लिये तैयार करने के लिये भी विशेष साधनों को प्रयोग में लेना पड़ता था ।

27.07 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये ।

(1) आमोद -प्रमोद के साधनों में पशु पक्षियों की लड़ाई का क्या स्थान रहा है

(2) हाथियों को नियंत्रण रखने के लिये किन औजारों का प्रयोग किया जाता था ।

(3) मेलों एवं पर्वों पर किन पशु युद्धों का आयोजन किया जाता था ।

(4) आखेट में 'हाका ' का क्या तात्पर्य है ।

(ब) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिये ।

(1) हाथियों की परस्पर लड़ाई का आयोजन किस प्रकार किया जाता था ।

(2) आखेट में प्रतिबन्ध लगाने के क्या अवसर एवं कारण थे ।

(3) राजस्थान के सामन्ती जीवन में रोमांचकारी खेलों के प्रति किस प्रकार की धारण थी ।

इकाई सं. 28 ' ' आमोद -प्रमोद के साधन"

इकाई संरचना

28.01 उद्देश्य
28.02 प्रस्तावना
28.03 अन्तर्कक्षीय
28.4 बाह्य कक्षीय खेल
28.5 बाजदारी
28.06 इकाई सारांश
28.07 अभ्यसार्थ प्रश्न

28.01 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जानकारी ले पोयंगे कि:-

(1) प्रदेश में परम्परा के रूप में खेलों का आमोद -प्रमोद के साधन के रूप में अपना महत्व है ।

(2) आमोद-प्रमोद के साधनों की विस्तृत सूची है और उन्हें सहजता से अन्तर्कक्षीय व बाह्य कक्षीय खेलों की श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है ।

(3) उत्सव एवं पर्वों के अवसर पर विभिन्न खेलों का आयोजन किया जाता है ।

(4) बाजदारी जैसे विशेष शौकों का भी अपना महत्व है ।

28.2 प्रस्तावना

मध्यकालीन राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास की पृष्ठभूमि में यहां के नागरिकों के सामाजिक जीवन मैं आमोद -प्रमोद का प्रमुख स्थान रहा है । अनेक विचारधाराओं का केन्द्र मानव मस्तिष्क निरन्तर क्रियाशीलता के दौरान कभी-कभी एकरूपता से उकता कर परिवर्तनशीलता लाना चाहता है । यह परिवर्तनशीलता मानव मन को दु:ख परेशानियों से कुछ समय के लिए विमुक्त कर प्रसन्नता की ओर ले जाती है । इस परिवर्तनशीलता हेतु मनोरंजन के अनेक साधनों को विभिन्न रूप से प्रयोग में लिया जाता है ।

यों तो आदिकाल से मानव किसी ना किसी रूप में आमोद-प्रमोद करता रहा है । मध्यकाल में मनोरंजन के अनेक साधनों का विकास हुआ । साथ ही विभिन्न प्रकार के अन्तर्कक्षीय एवं बाह्य मैदानी खेलों का आयोजन होने लगा जिसके अन्तर्गत चौपड़, शतरंज, गंजीफा, नारझली प्रमुख हैं । बाह्य मैदानी खेलों में पशु पक्षियों के मनोरंजन, मल्लयुद्ध, मुक्केबाजी, कुश्ती, तीरंदाजी, भाला फैंकना, तलवार चलाना, तैराकी, घुड़दौड़, रथदौड़, आखेट आदि अनेक साधन प्रमुख रूप से विकसित हुए । मुगल सम्पर्क से भी कई क्रीड़ाओ का स्थानीय क्रीड़ाओं में समावेश हुआ ।

राजस्थान की ख्यातों, बातों, लोक साहित्य, लोक गीतों में विभिन्न खेलों का वर्णन प्राप्त होता है । अभिलेखीय एवं पुरात्तत्व सामग्री भी यहाँ के विविध मनोरंजन साधनों को दर्शाती है ।

वैसे तो आपने प्रथम पाठ्यक्रम की इकाई सं. 28 में भारतीय जनजीवन के आमोद -प्रमोद के साधनों पर एक प्रकार से पर्याप्त अध्ययन किया है अत : इस प्रस्तुत इकाई में राजस्थान के संदर्भ

में आमोद -प्रमोद के साधनों एवं माध्यमों परप्रकाश डाला जा रहा है कुछ माध्यमों पर इसी पाठ्यक्रम की इकाई सं. 27 में अध्ययन भी कराया जा चुका है । उनके अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न प्रकार से हैं

28.03 अन्तर्कक्षीय खेल

शतरंज, चरभर, चौपड, नारझली इन खेलों का महत्व अंत:पुर में विशेष रूप से था । लाल ताश की बावन पत्तियों से ताश का खेल होता था । गंजीफा भी ताश के पत्तों से खेले जाने वाले खेल का एक स्वरूप था । राजाराड चौपड़ बना कर कौड़ियों से खेला जाता था । चौपड़ चौसर का खेल कपड़े के बने बिसात पर खेला जाता था । जिसे दो अथवा चार व्यक्ति खेलते थे । पासों से या कोड़ियों को फेंक कर गोटियों को पीटा जाता, जिससे हार जीत का फैसला होता था । इस खेल में धन, पशु संपत्ति को भी दाव पर लगाया जाता था । सामंत परिवारों में चौपड़ चौसर खेल का विशेष प्रचलन रहा । त्यौहारों, विशेष अवसरों एवं अतिथि मेहमानों के साथ विशेष कर सगाई शादी के अवसर पर जब बरात ' कई-कई दिनों, हफ्तों तक वधू पक्ष के यहां रुकती थी, तब चौपड़-चौसर खेलों के आयोजन होते थे । युद्ध के डेरों पर भी जब सेना को कई कई महिनों तक रुके रहना होता था तो नरेश अपने सामंत पदाधिकारियों कें साथ चौपड़-चौसर खेल का आयोजन कर मनोरंजन करते थे, । लम्बे समय तके चलने वाले इन खेलों के मध्य मदिरा सेवन, पान बीड़ा एवं भोजन के आयोजन भी हो जाते थे । रात होने पर विश्राम भी होता तथा कई-कई दिन तक चौपड़ की बिसात बिछी रहती एवं गोटियां रुकी रहती थी । स्वर्ण मोहरें, बांदी, गोली, सेविकाओं को भी मुगल बादशाह इन खेलों में दांव पर लगा देते थे ।

चरभर, नारझली व ज्ञान चौपड़ कौड़ियों से या इमली के बीजों की वितुओं से अथवा विविध रग के पत्थरों से खेला जाता था । दो से लेकर कई व्यक्ति इन खेलों को खेल सकते थे ।

ज्ञान चौपड़, ताश गंजीफा, चरभर, नारझली विश्राम के समय खेले जाने वाले लोकप्रिय खेल थे । घर में एक स्थान पर बैठकर खेले जाने वाले खेलों में शतरंज प्रमुख खेल था जो अभिजात वर्ग में लोकप्रिय था । इसमें ऊँट, घोड़े, हाथी, प्यादे, वजीर तथा बादशाह के मोहरों के माध्यम से विविध खण्डों पर दो व्यक्तियों द्वारा 'चाल ' चल कर खेला जाता था ।

ईमली के बीजों को तोड़कर खेला जाने वाला खेल अष्टाचंगा होता था । जिसे दो से चार व्यक्ति खेल सकते थे । इसके अलावा कौड़ियों का खेल, पच्चाटा का खेल, दूध तलैया मनोरंजन के खेल थे ।

इकड़ बीकड़, अंकामूट, चरभर, कौड़िया सात ताली तथा निसंडी (साप सीढ़ी) आदि मनोरंजन के खेलों का विवरण ख्यातों में अनेक जगह प्राप्त होता है । सामाजिक जीवन में आमोद-प्रमोद से राजस्थान के सांस्कृतिक जीवन की झलक मिलती है । विवाह आदि अवसरों पर जीवन को रसमय एवं उल्लासित करने हेतु कई खेलों के आयोजन होते थे ।

शादी के दूसरे दिन टूटियां खेल खेला जाता, जिसमें पेन्ट कोट पहन कर महिलायें ब्याह रचाने का खेल करती एवं अन्य हंसी ठिठौली की जाती थी । इन अवसरों पर डांडिया रास, घेरा, घूमर नृत्य भी मनोरंजन के साधनों के रूप में प्रयुक्त होते थे । शादी कर वर के घर आने पर वर वधू को दूधापाती का खेल एवं कई अन्य प्रकार के खेल खिलाये जाते थे । राजस्थान की पृष्ठभूमि में विवाह उत्सव को धूमधाम से मनाने की परम्परा प्राचीन समय से चली आ रही है । वधू पक्ष की ओर से वर पक्ष के

लोगों को कुछ परेशान करने तथा हास्य का माहौल बनाये रखने के उद्देश्य से भी कई मनोरंजक खेलों का आयोजन किया जाता था ।

तीज त्यौहारों विशेष संस्कार उत्सवों पर गायन, वादन, नृत्य की अनेक प्रतियोगिताएं होती थीं । राजपरिवार की ओर से समय -समय पर गुणी कलावन्तो को आमंत्रित कर गायन, वादन परम्परा को समृद्ध किया जाता था ।

28.04 बाह्य कक्षीय खेल

कुश्ती, पट्टेबाजी, शिकार खेलना, हिंसक पशुओं की लड़ाईयां, शौर्य प्रदर्शन के खेल इनका आयोजन राज्य द्वारा होता था । कुश्ती के बहुत से अखाड़े होते थे, जहां पहलवान वर्जिश कर अभ्यास करते थे । यह अखाड़े उनके गुरुओं के नाम से प्रसिद्ध होते थे । प्रत्येक गुरु के अनेक शिष्य होते थे, जो अनेक चेले कहलाते थे । पहलवानों की कुश्ती के खेल का प्रचार किया जाता था, एक अखाड़े के चेलों की कुश्ती दूसरे अखाड़े वालों से होती थी तथा गुरुओं का गुरुओं से दंगल होता था । राज्य की ओर से आयोजित हुए कुश्ती काल में विजित पक्ष को ईनाम प्राप्त होता था । श्रेष्ठ पहलवान को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। कोटा के अखाड़े पूरे प्रदेश में चर्चित रहे हैं ।

पट्टेबाजी, पशुओं की लड़ाई व तैरना आदि के खेल सार्वजनिक रूप से नगरों में आयोजित होते थे । इनमें से कई खेल मुगल दरबारों में आम खेल हो गये थे ।

लडकियां घरों में गुडियों के खेल खेलती थीं । यह गुडियाएं मिट्टी अथवा काष्ट की होती थी । अपने गुड़ियों के लिए वर छना तथा विवाह करवाना आदि मनोरंजनात्मक खेल बालिकायें खेलती थीं । लट्टू, चकरी, गुड़िया, गोलियां बच्चों के खेल के साधन थे ।

तीज, होली, गणगौर तथा दीपावली का त्यौहार एवं नवरात्रि, दशहरा आदि धार्मिक पर्वों को राज्यवासी धूमधाम से मनाते थे । राजा प्रजा का सम्पर्क बना रहता था।

होली के अवसर पर खेलों में डंडियों की गैर का खेल प्रमुख होता था, जिसे सामूहिक रूप से खेला जाता था । इकाई इसमें का बजाना एवं गीत गायन का आयोजन भी साथ -साथ होता था ।

पानी, रंग एवं अबीर का खेल भी होली पर विशेष होता था । 18 वीं 19 वीं सदी की जोधपुर की नित हकीकत बहियों से ज्ञात होता है कि अंत:पुर में होली के विशेष अवसर पर रंग का खेल, दडियों (गेन्दों) एवं पिचकारियों, रंग के गोटों से कई मनोरंजक खेल होते थे । नगरवासी भी रग के पानी से कढाव भर कर कई खेल खेलते थे । इस अवसर पर नरेश की सवारी का आयोजन होता तथा राजा प्रजा के मध्य भी आकर्षक होली का खेल होता था ।

त्यौहारों एवं उत्सवों पर आमोद-प्रमोद के आयोजित खेलों से विभिन्न जातियों तथा कई स्तर के व्यक्तियों में आपसी सम्बन्ध स्थापित होता था । आमोद-प्रमोद की विविधता समन्वय की भावना को परिपुष्ट करती थी । मध्यकालीन इतिवृत्तों एवं तात्कालिक लघु चित्रों से तथा उत्कीर्ण भित्ती चित्रों एवं संग्रहालयिक सामग्री के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मध्यकाल में मल्लयुद्ध, मुक्केबाजी एवं दौड़ बड़े लोकप्रिय व्यायाम थे, गणगौर एवं तीज के उत्सव, मेलों के अवसर पर ऊँट दौड़, घुड़ दौड़ मुख्य रूप से होती थी ।

द्वन्द युद्ध एवं धनुष बाण चलाना सार्वजनिक रूप से मनोरंजन के रूप में देखा जा सकता है । भाला फेंकना, पत्थर फैंकना, लट्ठबाजी, पट्टाबाजी, तलवारबाजी उत्तेजक खेल होते थे, जिन्हें दर्शक

उत्सुकता से देखते थे । लट्टबाजी के खेल मेले -तमाशों, पर्व उत्सवों पर बहुधा होते थे । गांवों में किशोर युवा वर्ग भी कभी -कभी लट्टबाजी कर अपना मनोरंजन करते थे ।

चौगान का खेल राजपूत जाति में अधिक प्रचलित था । तैरना, झूलना, सार्वजनिक मनोरंजन थे, जिनमें बालक, युवा सभी भाग लेते थे । पतंगबाजी का खेल मध्यकाल में मनोरंजन का प्रमुख साधन था । राजस्थान के साहित्यिक ग्रन्थों में इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं कि मध्यकाल में आकाश दीपकों को उड़ाने की परम्परा थी । मुगल सम्पर्क से इसका रूप पतंग में परिवर्तित हुआ । जयपुर में मकर संक्राति के पर्व पर पेचा लिये जाने के खेल की अनूठी परम्परा रही है । निर्जला एकादशी पर उदयपुर में पतंगों के खेल होते थे ।

ताली देना, आंख मिचौनी, मारधड़ी, गिल्ली डण्डा, दड़ी गोता, सतौलिया बच्चों के खेल होते थे, जिन्हें वे गली मौहल्लों में खेलते थे । टिल्लम टिल्लो, मींया धोड़ी, कबडी, फदकंड, हुडकियौ-दुडकियौ, उठ-बैठ, सडसड, दयाबीसी, किरकांटियौ आदि खेल भी बालकों में अत्याधिक प्रचलित थे ।

खो -खो, पकड़ा -पकड़ी, चोर -सिपाही, गिल्ली डण्डा, लट्टू, मोहरा, कोयल, चकरी एवं भंवरा चलाना, लाठियों, डंडियों का खेल भी बच्चों के मनोरंजन हेतु होते थे । बहुत से बच्चे मिल कर कबडी का खेल खेलते थे, जिसमें दो पाले बनाये जाते थे, कबडी -कबड्डी कहता हुआ एक बालक दूसरे पाले में जाता था जिसको पकड़ने के लिए दूसरे पाले के बच्चे भागते बालिकाएं फून्दी का खेल, घेरा, आँख मिचौली, मारधड़ी, अकड़ बकड़, घोड़ा जमार खाई आदि खेल प्रमुखता से खेलती थीं ।

बालिकाओं द्वारा लाख, काष्ठ तथा साधारण एवं संगमरमर के पत्थर के गट्टों द्वारा खेल खेला जाता था, जो कि संख्या में पांच होते थे । वर्षा में गीली मिट्टी से घर, मन्दिर एवं लह बनाकर छोटे बालक-बालिकायें खेला करती थीं । उछल -कूद के खेलों में लुका-छिपी, मारधड़ी, कोड़ा कतरा, हरदड़ा, सूरज कुंडाला, कच्छी घोड़ी, टीडीलो - पीडीलो, लूण कयार, कुरकाई आदि खेल होते थे । अश्व एवं हस्ती पोलो का खेल भी अभिजात वर्ग में प्रचलित था, साइकिल आविष्कार के पश्चात साइकिल पोलो खेल का भी प्रचलन रहा ।

28.05 बाजदारी (फालकनरी)

बाजदारी (फालकनरी) हमारे देश की अति प्राचीन कला है । भारत में प्राचीन काल से बाज पाले जाते रहे हैं व कई प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में बाजों का व बाज पालने की कला का उल्लेख मिलता है । उदाहरण के तौर पर संस्कृत के मान्सोल्लास नामक ग्रन्थ में श्येन विनोद नाम से एक पूरे विस्तृत अध्याय का विवरण मिलता है । उल्लेखनीय है कि श्येन संस्कृत में बाज को कहते हैं । इसके अलावा कुमाऊ के सम्राट महाराजा रूद्रदेव ने सोलहवीं शताब्दी में बाजदारी पर व फालकन पर अति प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करके और अपने बाज पालने के अनुभवों के आधार पर श्योनिक शास्त्र नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी । जो शायद तलाश करने पर अब भी प्राचीन पुस्तकालयों में उपलब्ध हो सकता और इसके अलावा बाजदारी पर व बाज पंक्षी पर फारसी व अरबी में कई ग्रन्थ लिखे गये थे उन्हें भी तलाश करके उनका अनुवाद कराया जा सकता है और उनसे वर्तमान में बाजों के संरक्षण और वृद्धि में लाभ उठाया जा सकता है । चालुक्य राज सम्राट सोमेश्वर देव द्वारा रचित विशाल ग्रन्थ मान्सोल्लास में राजा सोमेश्वर देव ने उसमें एक काफी बड़ा विस्तृत अध्याय श्येन विनोद (बाजदारी) के नाम से रचित किया था । इस बात से यह प्रतीत होता है कि भारत वर्ष में मुस्लिम शासकों के आने से भी

सैकड़ों वर्ष पूर्व से भारत में बाज पाले जाते थे और यहां के लोगों को इस कला परम्पराओं का काफी गहराई से ज्ञान था ।

बाज पक्षी परिन्दों की दुनिया का बादशाह है । इसकी रफ्तार-झपट, मजबूती और पैनी दृष्टि सचमुच उसे यह रुतबा दिलाती है । मुगल काल में बाज को पालना एक बड़ा शौक बन गया था । बादशाहों की कलाई पर बैठे परिन्दों के इस बादशाह की अपनी शान और रुतबा अपना ही था । बादशाहों व राजा -महाराजाओं को तो यह शौक था ही, उनसे ज्यादा इस पक्षी को पालने का अपनी कलाई पर बिठाकर घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने का शौक बेगमों और राजकुमारियों को भी बहुत था। अनेकों चित्र मिलते हैं जहां राजकुमारिया अपने इस प्रिय पक्षी बाज को उड़ाती हुई, शिकार खेलती हुई दिखाई गई है । बादशाह जहांगीर को भी बाज रखने का बड़ा शौक था । उसके पास कई चुनिन्दा बाज थे जो प्रशिक्षित थे । वह सुदूर प्रदेशों से अच्छी नस्ल के बाज मांगता रहता था । जहांगीरनामे में खुद शहनशाह जहांगीर ने अपने इस शौक बाजदारी के बारे में काफी लिखा है । ईरान के शाह ने उन्हें बढ़िया बाज भेंट किया था । उसके बारे में भी जहांगीर ने अपनी जीवनी में जिक्र किया है । अपने राजदरबार के चित्रकार को आज्ञा देकर उसका चित्र बनवाया । इस चित्र पर राजचित्रकार उस्ताद मन्सूर के हस्ताक्षर हैं । चित्र में नागरी लिपि में लिखे हुए विवरण में 'बेहरी ' और उत्तम शब्द लिखे हुए हैं ।'बेहरी ' बाज की बेहतरीन नस्ल है । यह चित्र महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीय म्यूजियम (सिटी पैलेस) में सुरक्षित है । पक्षी विशेषज्ञ डॉ. सलीम अली ने इसे 'फाल्कन ' बताया, जो बाज ही है । बाज की कई नस्लें हैं, जैसे बेहरी, लगड़, जुर्रा, बाशा, गुलाबचस्म, स्हाय -चश्म आदि संस्कृत में इसे 'श्येन ', रघट और वेगी कहा गया है ।

बाजों को राजा, महाराजा, बादशाह परिन्दों का शिकार करने के लिये पाला करते थे । वे लोग अपने शिकार में अमले में बाजों को रखना बड़े गर्व की बात समझते थे और अपने यहाँ बाजदारों को सम्मानित करके उन्हें जागीरें तक प्रदान करते थे । मुगल बादशाहों में अकबर, जहांगीर, शाहजहां व अधिकांश शहजादे, शहजादियों और अमीर - उमराओं को यह शौक हुआ करता था । राजपूताने में भी राजा महाराजाओं की शिकारखाने में बाजदारी का सम्मान प्राप्त था ।

मिर्जाराजा जयसिंह के पौत्र महाराज कुमार किशन सिंह की अनेक तस्वीरें बाज को हाथ पर बिठाए मिलती हैं । इन्हें बाजदारी का बेहद शौक था । वर्तमान में जयपुर को नया स्वरूप देने वाले महाराजा सवाई रामसिंह जी को भी बाजदारी का बेहद शौक था । उन्होंने तो बाकायदा बाजदारों का एक पूरा कबीला बुलाकर जयपुर में आबाद किया था । ये लोग बाज पालने में बेहद माहिर थे । इन खानदान में इस हुनर के जानने वाले आखिरी शौकीन छोटे खां बाजदार थे जिनका जिक्र कर्नल केशरी सिंह कानोता ने अपने संस्मरण में किया है । सिक्खों के दसवें गुरु श्री गोविन्द सिंह के साथ भी उनका प्यारा बाज रहता था । इसके अलावा अरब देशों के बादशाहों, अमीरों को भी इसका खास शौक था और आज भी है । वहां इस पक्षी को खास सम्मान प्राप्त है ।

हालांकि आज बाज तो जंगल में बहुत हैं, पर बाजदारी का हुनर और बाज को प्रशिक्षित करने के शौकीन नाममात्र के रह गये हैं, पर बाजदारी पर गर्व करने वाले जयपुर शहर में एक नौजवान 'शाहिद खान ' आज भी मौजूद हैं । खान बाज पालते हैं बाजदारी के माहिर हैं, और इस पुराने हुनर को इन्होंने जीवित रख छोड़ा है । यह शौक एक आम आदमी के बस की बात नहीं है । काफी खर्चीला शौक है । बड़ी मेहनत और होशियारी की इसमें जरूरत हैं । बाज को प्रशिक्षित करने के लिंए जंगल में पकड़ा

जाता है, इसके बाद खास किस्म से बना चमड़े का कन्टोप उसे पहनाया जाता है जिस एक तजुर्बेकार बाजदार ही होशियार मोची से अपने सामने तैयार करवाता है । यह कन्टोप बाज के सर का नापा देखकर तैयार होता है । इसके बाद बाज के स्वभाव का बारीकी से अध्ययन करके उसकी ट्रेनिंग व उसके तरीके तय किये जाते हैं । उसके स्वभाव का अध्ययन करने में बड़ी तजुर्बेकार और होशियारी की जरूरत होती है । बाज की मामूली से मामूली हरकत का अर्थ लगाकर देखा जाता है । अगर इसमें जरासी चूक हो जाती है तो बाज का सही प्रशिक्षण भी नहीं हो पायेगा । इसलिए बड़ी होशियारी और मेहनत से अध्ययन करना पड़ता है । इसके लिए रात -दिन एक किए जाते हैं, इसके बाद बाज की खास ट्रेनिंग शुरु की जाती है । 15 - 20 दिनों में बाज काफी प्रशिक्षित हो जाता है । तब उसे जंगल में ले जाकर उनमुक्त आकाश में उड़ाया जाता है । जब बाज अपनी उड़ान पूरी कर अपना प्राकृतिक आहार प्राप्त कर लेता है तो उसे एक विशेष परों से बने दलवे का इशारा देकर वापस बुला लिया जाता है बाज वापस आकर अपने मालिक के हाथ पर बैठ जाता है । ट्रेनिंग के दौरान और ट्रेनिंग के बाद बाज को शुद्ध देशी जड़ी बूटियों से तैयार दवाइयां दी जाती हैं जिनसे बाज में ट्रेनिंग के दौरान किसी प्रकार की कमजोरी न आने पाये और वह निरोग व चुस्त बना रहे । यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि बाजदारी के लिए बाज पालने के दौरान बाज को पिंजरे में कैद करके नहीं रखा जाता बल्कि ट्रेनिंग के बाद उसे उसकी प्राकृतिक जिन्दगी से जोड़कर रखते हुए बाजदारी की जाती है ।

28.06 इकाई सारांश

इस इकाई में हमने राजस्थान प्रदेश के संदर्भ में आम जीवन में आमोद -प्रमोद के कुछ साधनों पर प्रकाश डाला है । किस प्रकार यहाँ का जन अपनी रोजगार की दिनचर्याओं के पश्चात बदलाव के व बहलाव लिये अनेक साधनों एवं माध्यमों का सहारा लेता था । इस इकाई में आपने पढ़ा कि वे माध्यम अन्तर्कक्षीय एवं बाह्यकक्षीय दोनों रहे हैं । अर्न्तकक्षीय में चौपड़, शतरंज, ताश, गंजीफा, नारझली, चरभर, इकड-बीकड, अंकामूट, कॉढ़ियां, सात ताली, निसंडी आदि प्रमुख हैं । इसके अतिरिक्त शादी एवं अन्य अवसरों पर रचे जाने वाले स्वांग, दूल्हा दुल्हन के बीच के खेल, हंसी -ठिठोली के तरीको का भी अपना महत्व रहा है । बाह्य खेलों में कुश्ती, पट्टेबाजी, शिकार, पशुओं की लड़ाइयाँ, शौर्य प्रदर्शन के खेल, लट्ठबाजी, पतंगबाजी, गिल्ली डण्डा, सतोलिया, आंख मिचौली, लूणाघाटी, कबड्डी, दड़ी -गोता, फदकंड, उठ -बैठ, दयाबीसी, खो - खो, लट्टू चकरी, चोर-सिपाही, डांडिया आदि आदि मुख्य थे । बालिकाओं के खेल में गुडा -गुड्डी, फून्दी, आँख मिचौली, सतौलिया, झूलना, अकड़-बकड़, नीसरनी आदि मुख्य खेल होते थे । इस इकाई में हमने बाजीगरी का भी विशेष उल्लेख किया है । कबूतर बाजी का विवरण तो बहुधा आता है लेकिन बाज गिरी के विशेष खर्चीले शौक के बारे में कम अध्ययन किया गया है ।

28.07 अभ्यासार्थ प्रश्न

(अ) निम्न प्रश्नों का उत्तर 150 शब्दों में दीजिये. -

(1) चौपड़ खेल के बारे में टिप्पणी कीजिये ।

(2) विवाह के अवसर पर किस प्रकार के अन्तर्कक्षीय खेल खेले जाते हैं ।

(3) अखाड़ों का मनोरंजन के क्षेत्र में किस प्रकार का स्थान है ।

(4) बालिकाएं किन -किन प्रकार के खेलों को अपनाती थी ।

(ब) निम्न प्रश्नों का 500 शब्दों में उत्तर दीजिये. -

(1) उत्सव पर्वों पर किन -किन खेलों को पसन्द किया जाता था ।

(2) बाह्यकक्षीय खेलों पर टिप्पणी कीजिये ।

(3) बाजदारी एक विशेष शौक है, विवेचना कीजिए ।

छात्र टिप्पणी

छात्र टिप्पणी

छात्र टिप्पणी